स्वामी रामतीर्थ

भाग सोलहवां ।

परमहंस स्वामी रामतीर्थ

प्रकाशक,
श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।
लखनऊ ।

स्वामी रामतीर्थ

भाग सोलहवां।

परमहंस स्वामी रामतीर्थ

प्रकाशक,
श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।
लखनऊ।

श्री

स्वामी रामतीर्थ।

उनके सदुपदेश-भाग १६।

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण
प्रति २००० } —:*:— { जौलाई १९२२
श्रावण १९७९

फुटकर

बिना जिल्द ॥=) } डाक व्यय रहित। { सजिल्द ॥।=)

निवेदन ।

आप की सेवा में सोलहवां भाग भेजते हुए चित्त ईश्वर का धन्यवाद कर रहा है कि उस के अनुग्रह से लीग अपनी प्रतिज्ञा-पालन में सफल हो रही है । १७ वां और १८ वां भाग दोनों एकट्ठे छपेंगे, क्योंकि उन में स्वामी राम जी के वह पत्र प्रकाशित होंगे कि जो अपनी बाल्यावस्था में राम ने अपने गृहस्थाश्रम के गुरु भगत धन्ना राम जी को २० वर्ष तक निरन्त लिखे थे, और जो ११०० पत्रों में से चुने जाकर १९१२ में उर्दू भाषा में "रामपत्र" के नाम से प्रकाशित हुए थे। १७ वां और १८ वां इन दोनों भागों के भेज देने के पश्चात् ग्रन्था-वली का नया वर्ष आरम्भ होगा और आशा है कि तब तक ग्राहक लोग हमें सूचना दे रक्खेंगे कि उनका नाम दर्ज रजिस्टर आगे के लिये भी बना रहे। अभी तक ग्राहक श्रेणी जितनी बढ़नी चाहिये थी, नहीं बढ़ी है, इस लिये सब राम भक्तों व लीग के सहायक तथा शुभचिन्तकों से प्रार्थना है कि ग्राहक संख्या को बढ़ाने के लिये वे अपने तन मन से लीग की सहा-यता करें और इस प्रकार रामोपदेश के प्रचार में स्वयं भाग लें।

मंत्री

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

श्री स्वामी रामतीर्थ ।

अमेरिका १६०३
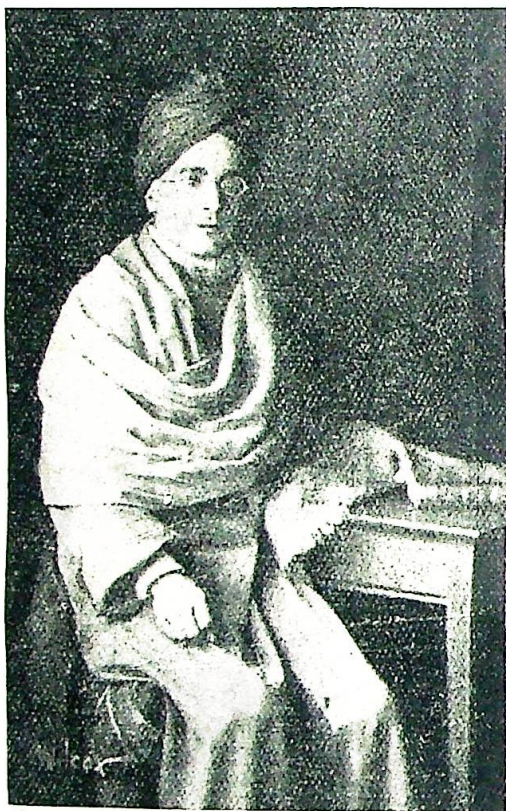
स्वामी रामतीर्थ ।

ग़ैर मुल्कों के तजरुबे ।

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

सत्य की हमेशा जय होती है, झूठ की नहीं। पुराणों में लिखा है कि लक्ष्मी विष्णु की सेवा करती है, विष्णु के पाँव दाबती रहती है, अर्थात् लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है। लक्ष्मी विष्णु की छायावत् साथी है। विष्णु है, तो लक्ष्मी है, विष्णु नहीं, तो लक्ष्मी भी नहीं है। यह बात बहुत ठीक है। विष्णु के अर्थ सत्य और धर्म के हैं, लक्ष्मी के अर्थ धन और जय के हैं। सो जहां सत्य और धर्म है, वहीं धन और जय है। जहां सत्य और धर्म नहीं, वहां धन और जय नहीं। गीता में लिखा है "यतो धर्मस्ततो जयः"। अतएव यदि विष्णु

रूपी धर्म की ओर बढ़ोगे, तो लक्ष्मी रूपी जय और धन तुम्हारी छाया के समान तुम्हारे पीछे २ फिरा करेंगे। पर विष्णु रूपी धर्म से विमुख होने पर, यदि तुम चाहोगे कि लक्ष्मी रूपी जय और धन प्राप्त करलें, तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। सूर्य्य की ओर पीठ करने से अपनी छाया को कोई भी अपनी अनुगामिनी नहीं कर सकता। जितना ही दूर तुम भागते चले जाओगे, छाया सर्वदा आगे ही भागती चली जायगी और हाथ नहीं आवेगी। पर जिस समय सूर्य की ओर मुँह कर लोगे, तो उसी समय छाया (लक्ष्मी) तुम्हारे पीछे हो जावेगी और तुमको छोड़ नहीं सकेगी। सो जय और लक्ष्मी (धन) चाहनेवालों को सर्वदा सत्य और धर्म पर दृष्टि रखना चाहिये। हमारे हिन्दुस्तान की आज-कल जैसी कुछ दशा है, वह सब पर विदित है। प्लेग राक्षस हज़ारों आदमियों का सफाया कर रहा है, अकाल लाखों आदमियों का खून चूस रहा है। हैज़ा चेचक आदि सैकड़ों बिमारियां करोड़ों आदमियों के प्राण ले रही हैं। कहां तक कहें, हिन्दुस्तान हर प्रकार से दुःखी है। हिन्दुस्तान की ऐसी शोकमयी दशा क्यों है? इसके उत्तर में "राम" यही कहेगा कि सत्य और धर्म का हास हुआ है। हिन्दुस्तानियों की सत्य और धर्म पर श्रद्धा नहीं। हिन्दुस्तान में धर्म केवल बोलने के लिये है, वर्ताव में लाने के लिये नहीं।

अब 'राम' हिन्दुस्तान और अमेरीका का मुकाबिला करता है। अमेरीका हिन्दुस्तान के पैर के नीचे है। हिन्दुस्तान में दाहिनी ओर से जाते हैं, अमेरिका में बांई ओर से जाते हैं। हिन्दुस्तान में मन्दिरों या मकानों में जाने से पहिले जूता उतारते हैं, अमेरिका में टोपी उतारते हैं। हिन्दुस्तान में पुरुष

घर का मालिक होता हैं और स्त्री पर हुकूमत करता है, अमेरिका में स्त्री घर की मालिक होती है, पुरुष पर हुकूमत करती है। हिन्दुस्तान में कुत्ता सब से अपवित्र और गधा सब से बेवक़ूफ़ जानवर समझा जाता है, अमेरिका में कुत्ता सबसे पवित्र और गधा सबसे बुद्धि मान् (अक़्लमन्द) समझा जाता है। वे गधे से बड़ी २ अक़्ल सीखते हैं। हिन्दुस्तान में उस किताब की बिलकुल कद्र नहीं होती जिस में कुछ भी दूसरी किताब की नक़ल न हो, अमेरिका में उसी किताब की प्रतिष्ठा होती है जो बिलकुल नई होती है। हिन्दुस्तान में कोई आदमी ऐसा काम नहीं करता या करना चाहता, जिसका नतीजा वह अपनी आँखों के सामने न देख लेवे, यहां तक कि बूढ़े आदमी बग़ीचा लगाने में भी हिचकिचाते हैं, पर अमेरिका में यह बात नहीं है। वहां हर एक आदमी काम करता है और फल की इच्छा नहीं रखता। वे अपना फ़ायदा नहीं देखते, किन्तु मुल्क का फायदा देखते हैं। जापान में एक अमेरिकन प्रोफ़ेसर था, वह बहुत बूढ़ा था, बारह भाषायें जानता था। इस आयु में रूसी भाषा पढ़ रहा था। 'राम' ने उस से पूछा कि "आप रूसी भाषा पढ़कर अब क्या करेंगे ?" उसने उत्तर दिया "मैं ने सुना है कि रूसी भाषा में भूगोल सब से उत्तम है, सो मैं रूसी भाषा को इस अभिप्राय से पढ़ रहा हूं कि मैं उस भूगोल को पढ़ूं और उसका अनुवाद अपनी भाषा में करूं ताकि हमारी ज़ुबान में भी अच्छा भूगोल हो, और हमारे मुल्क को फ़ायदा पहुंचे"। वह फल की इच्छा नहीं रखता था, पर उस बुढ़ापे में जो वह दूसरी भाषा पढ़ने का कड़ा परिश्रम कर रहा था, वह केवल अपने मुल्क के उपकार व फ़ायदे के वास्ते था। क्या हिन्दुस्तानी कभी अपने मुल्क के लिये ऐसा परिश्रम करता है ? और फिर उस बुढ़ापे

में ? यहां तो मरने का बड़ा भय रहता है, इस मुल्क वालों को अक्सर यह कहते सुनते हैं "मरना है, किसके लिये करना है ?" तो भला हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति होवे ?

हिन्दुस्तान में कोई आदमी अपने पूर्व पुरुषों से आगे बढ़ना नहीं चाहता, और जो आगे बढ़ता है वह नास्तिक समझा जाता है, अर्थात् लोगों में उस की प्रतिष्ठा नहीं होती है, अपने बाप दादाओं की लकीर का फकीर न रहने से कलंकित किया जाता है, पर अमरीका में उस आदमी की बिलकुल कदर नहीं होती जो अपने बाप से दो कदम आगे न बढ़ा हो। वहां प्रत्येक आदमी के हृदय में यही प्रबल इच्छा रहती है कि हमारे बाप दादाओं ने जो कुछ किया है उस से हम को अधिक करना चाहिये, जो हम उस से कम या बराबर ही हुए, तो हम नालायक़ ही हुए। जब कि दिल में ऐसे ख्याल हैं, तब वह लोग उन्नति न करें, तो क्या हिन्दुस्तानी उन्नति करेंगे ?

हिन्दुस्तानी अन्य देशों को जाने से अपना धर्म खोया हुआ समझते हैं, और बिना दूसरे मुल्क जाए हुए उन्नति नहीं होती। यह बात सिद्ध ही है, क्योंकि अपने मुल्क की उन्नति के लिये यह ज़रूरी है कि दूसरे मुल्कों की रस्म, रिवाज, रीति, नीति, कला, कौशल, आचार, विचार, विद्या और वैभव मालूम हों; पर ये बातें तब तक मालुम नहीं होतीं जब तक कि उन मुल्कों में जाकर खुद न अनुभव करे। परन्तु जब दूसरे मुल्कों को जाना ही हिन्दुस्तानी पाप समझते हैं, तो उन बातों का कैसे अनुभव कर सकते हैं ? बिना अनुभव किये उन्नति कैसे हो सकती है ? अफसोस ! हिन्दुस्तानी के ख्याल में यह बात आ ही नहीं सकती है कि दुनिया में क्या हो रहा है ? हम लोग एक मकान के अन्दर बिल्कुल

बन्द हैं। हम नहीं ख्याल कर सकते हैं कि मकान के बाहर कैसी सुगन्धित वायु चल रही है, कैसे विचित्र मनोहर पुष्प खिले हुए हैं ? प्रकृति का सौंद्र्य्य कैसा सुख-प्रद है। इधर जब हिन्दुस्तान की ऐसी दशा है, तो अमेरीका वाले कभी घर पर नहीं रहते हैं। अमेरीका में उस आदमी का जन्म निष्फल समझा जाता है जिस ने कभी दूसरा मुल्क न देखा हो। यूरुप के देशों की भी यही कैफ़ियत है। जर्मनी प्रवासियों का इस तरह का हिसाब है कि दस हज़ार मिश्र देश में, पैतालीस हजार पेरस में और आठ फी सैकड़ा दुनिया के और हिस्सों में बराबर आते जाते रहते हैं। कैसा ज़बरदस्त देशाटन है !

एक दफे "राम" जर्मन के जहाज़ में सफ़र कर रहा था। 'राम' जहाज़ के छत पर गया, और वहां कुछ ईश्वरके विषय में भजन गाने शुरू किये। ठंडी २ हवा चल रही थी, आस्मान साफ़ था, प्रकृति की सुन्दरता देखने योग्य थी। एकान्त स्थान होने से "राम" ने ज़ोर २ से गाना शुरू किया। "राम" अति आनन्द दशा में था, कि "राम" का गाना सुनकर उस ज़हाज का कप्तान और कितने ही मुसाफिर जो कि प्रायः सब जरमनी के थे, " राम " के पास आये और "राम" के साथ बात चीत करने लगे। सिवाय कप्तान के और आदमी अंग्रेजी नहीं समझ सकते थे। "राम" अंग्रेज़ी में बात चीत करता था और कप्तान अपने साथियों को अपनी भाषा में समझाता था। वह कप्तान हिन्दू और हिन्दू धर्म्म के विषय में बात चीत करता था। उससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसको हिन्दू धर्म्म के विषय में इतना अनुभव कहां से प्राप्त हुआ ? पूंछने से मालुम हुआ कि दुनियां भर के देशों के धर्म,

विद्या और रस्म, रवाज जानना वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। और इसी अभिप्राय से वे लोग देशाटन करते हैं। "राम" ने उन से पूंछा "इससे क्या लाभ होगा?" उसने उत्तर दिया सब मुल्कों के रस्म रिवाज़ और धर्मों को जान कर जो २ रस्म रिवाज विद्या और धर्म हमारे मुल्क को लाभ पहुँचाने योग्य समझे जांयगे, उनका अपने मुल्क में प्रचार करेंगे। विद्या का प्रकाश सब मुल्कों से लेना चाहिये, नहीं मालूम किस मुल्क में कौन सी विद्या है। सब देशों की विद्या का प्रकाश हम अपने मुल्क में ले जायगें तो हमारे मुल्क में महाप्रकाश हो जायगा"। अहो! अपने देश में प्रकाश फैलाने की अर्थात् अपने देश की उन्नति करने की यह कैसी नैसर्गिक विचार की भूमिका है। अहो! हिन्दुस्तानियों! तुम्हारी कैसी शोचनीय दशा है? तुम्हारी आँख कब खुलेगी? क्या कभी तुम्हारे हृदय में इन देव तुल्य मनुष्यों के समान अपने मुल्क (स्वदेश) की भलाई, उन्नति और उपकार का ख्याल पैदा होगा? क्या कभी तुम लोग भी इन जर्मनों के समान अपने देश में विद्याओं का महाप्रकाश करने की इच्छा से इस प्रकार भिन्न २ देशों में जाकर वहां से विद्या का प्रकाश लाओगे?

पहले जब हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्कों में जाने के लिये रोक नहीं होती थी और यहां प्रकाश था, तब हिन्दुस्तानी अपने मुल्क के प्रकाश से अन्य मुल्कों को प्रकाशित करते थे। पर जब से बाहर आने जाने का मार्ग बंद कर दिया गया, तब प्रकाश भी बन्द हो गया और अंधेरा फैल गया। यहां से प्रकाश क्यों चला गया? प्यारे! एक मकान के भीतर जिसमें प्रकाश आने जाने के लिये खिड़की और दर्वाजे हों, जब बाहर

के प्रकाश (सूर्य्य की किरणों) से खूब प्रकाशित होगया हो, और इस अभिप्राय से तुम उसकी खिड़की और दर्वाज़े बंद करदो कि भीतर का प्रकाश बाहर न जाने पावे, तो क्या उस मकान के भीतर प्रकाश कभी ठहर सकता है ? कभी नहीं, ज्योंही मकान का दर्वाज़ा और खिड़कियां बन्द होंगी, मकान के अन्दर अंधेरा फैल जायगा. और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हो जायगा। बस हिंदुस्तान की भी यही दशा हुई। बाहर आने जाने के सब दर्वाज़े बंद कर दिये गये, सो नतीजा यह हुआ कि यहां जो कुछ प्रकाश था, वह भी बंद हो गया, और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हुआ, और हिंदुस्तान में अंधेरा फैल गया। शास्त्रों में लिखा है कि विद्या रत्न नीच से भी लेना चाहिये और सबको देना चाहिये। जितनी ही विद्या तुम दूसरों को दोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या बढ़ेगी और तरक़्क़ी पावेगी, किन्तु अफसोस है कि हिन्दुस्तानी दूसरों को विद्या देने में निहायत संकोच करते हैं और दूसरों से भी विद्या नहीं लेना चाहते। दूसरों की विद्या न सीखी जाय, इसके लिये समुद्र यात्रा का निषेध हुआ। इस दशा में विद्या रूपी प्रकाश का किस प्रकार प्रकाश रहता ? अहो ! खुदगर्ज़ी क्या किसी और चीज़ का नाम है ? वेद और शास्त्र जिनसे परमात्मा विषयक ज्ञान होता है, किसी अन्य देशी को न पढ़ाये जायं, ग़ैर मुल्कों में उनका प्रचार न किया जाय, क्या इससे परमेश्वर प्रसन्न होगा ? क्या अन्य देश निवासी परमेश्वर के बनाये मनुष्य नहीं हैं ? परमात्मा ने सच्चे ज्ञान के भंडार (वेदों) को आप लोगों के पास सौंपा, ताकि मनुष्यों को उसका यथार्थ ज्ञान हो, और तुम अपना कर्तव्य भूल कर उनको अपनी ही सम्पत्ति समझने लगे, तो बताइये कि ईश्वर का कोप तुम पर न हो तो क्या हो ? देखो,

ईसाई लोग बाईबिल को ईश्वरी ज्ञान मानते हैं, उनकी नज़र में बाइबिल के अनुकूल न चलने से किसी को मुक्ति नहीं हो सकती, बाइबिल ही उनकी समझ से संसार के परित्राण करने का एक मात्र अवलम्ब या उपाय है, तो देखिये, ये लोग इसके प्रचार के लिये कितनी तकलीफें उठाते हैं। कितनी जानें खोते हैं, कितने रुपये खर्च करते हैं। वे उदार मनुष्य संसार को भ्रष्ट करने के लिये ऐसा नहीं करते हैं, किन्तु संसार की भलाई की इच्छा से ही ऐसा करते हैं। ईश्वरीय ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। ओहो! परमात्मा उन पर खुश न हो तो किस पर खुश हो? क्योंकि ईश्वर ने जो कुछ जैसा और जितना ज्ञान उन को दिया है, वे उसको जैसे का तैसा दूसरों को देने में संकोच नहीं करते हैं, किन्तु तकलीफ़ उठाकर, उनको विद्या पढ़ा कर, रुपया खर्च कर यहां तक कि प्राण गँवाकर भी ज्ञान देते हैं। पर हिन्दुस्तानियों! तुम्हारे पास जो कुछ सौंपा गया है, क्या तुम भी इन जगत हितैषी ईसाइयों के समान उसका संसार में प्रचार कर रहे हो? यदि नहीं, तो क्या ईश्वर तुम पर खुश होता होगा? यदि कहो कि क्या मालूम कि ईश्वर खुश होता है कि नहीं, तो क्या अभी तक तुम समझ नहीं सके, कि ईश्वर का तुम पर कितना कोप हो रहा है? राज्य गया, लक्ष्मी गई, विद्या गई, प्रतिष्ठा गई, बल गया, पौरुष गया, और सर्वस्व गया, तौ भी न समझे, तो अकाल आया, प्लेग आया, हैज़ा आया, तो क्या अब भी समझ में नहीं आता कि ईश्वर हम पर कोप कर रहा है? प्यारो! सम्हलो, अभी सम्हलने का समय है।

परमेश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं, क्योंकि परमेश्वर ने

सब को बनाया है। और यदि हम परमेश्वर को खुश करना चाहें, तो हम को चाहिये कि हम प्राणी मात्र से प्रेम करें। भाई के मारने या उसके साथ बैर करने या उसको नफरत करने से बाप कभी खुश नहीं हो सकता, तब क्या किसी मुनुष्य को नफ़रत करने से या नीच समझने से परमेश्वर जो सब का पिता है, कभी खुश हो सकता है ? कदापि नहीं ? खाली मुँह से यह बात कहते जाना कि हम परमेश्वर को मानते हैं, उस से प्रेम करते हैं, काफी नहीं है। तुमको चाहिये कर्म द्वारा इस का सबूत दो। सबूत यही है कि तुम मनुष्य मात्र से प्रेम करो, प्राणी मात्र से प्रेम करो, जगत मात्र से प्रेम करो, सबको बराबर और अपने ही बराबर समझो, अर्थात् यह ख्याल रक्खो कि जो कुछ मैं हूं वह वे हैं, और जो कुछ वे हैं वह मैं हूं, अर्थात् मैं और वह अलग २ कुछ नहीं किन्तु एक ही हैं। चाहे कोई किसी ज़ात का हो, किसी देश का हो, किसी रंग का हो, इसकी परवाह मत करो। जाति धर्म, मज़हब, देश और रंग से कुछ मतलब नहीं, तुमको तो ईश्वर को खुश करने से मतलब है, अर्थात् अपना कर्तव्य पालन करना है। हाथ शरीर के सब अंग और प्रत्यंगों को सहायता पहुंचाता है। पैरों को, उपस्थ इन्द्रिय को, या और किसी अंग को जब तकलीफ होती है, तब फौरन हाथ उनकी सहायता के लिये पहुँच जाता है। हाथ यह कभी विचार नहीं करता है कि पैर मुझ से नीचा है, गुदा आदि इंद्रियां अपवित्र हैं, मुँह में थूक है, नाक में सींड है, कान के अन्दर मैल है, वह सम-दृष्टी से सबको सहायता पहुँचाता है, और सब की तकलीफों को दूर करने का प्रयत्न करता है। यह कभी ख्याल नहीं करना चाहिये कि यह मुझ से नीचे है या भिन्न मज़हब का है। अमेरिका में रविवार के दिन एक

साहब से 'राम' की मुलाकात हुई। उस की मेम दूसरे मज़हब की थी और वह दूसरे मज़हब का था (ईसाईयों के भी कई मज़हब हैं, कोई रोमनकैथोलिक और कोई प्रोटेस्टेंट कहलाते हैं), अर्थात् उसकी मेम(स्त्री) रोमन कैथोलिक थी और वह प्रोटेस्टेंट था। वह अपने २ गिर्जों में तो गये, पर साहब पहले अपनी मेम को उसके गिर्जे में पहुँचा आया, तब अपने गिर्जे में गया, फिर अपने गिर्जे से अपनी मेम के लेने के लिये उसके गिर्जे में गया, और तब वह साथ २ घर आये। 'राम' ने उस साहब से पूंछा कि तुम स्त्री-पुरुष भिन्न मज़हब के हो, कैसे एक दूसरे से प्रेम करते हो? उसने उत्तर दिया "मज़हब का ईश्वर के साथ सम्बन्ध है और इसका (मेरी मेम का) और मेरा इस दुनियां का सम्बन्ध है। ईश्वर के सामने अपने कर्मों का उत्तर दाता मैं हूं और वह अपने कर्मों की उत्तरदाता है, सो हमको बिवाद करने से क्या मतलब है? हम दुनियां के संवन्ध से आपस में प्रेम करते हैं। साहब ने ठीक उत्तर दिया। ऐसा ही होना चाहिये। परन्तु हिन्दुस्तान में यदि स्त्री वैष्णव है और पुरुष शैव, तो उनके बीच कभी प्रेम नहीं होता है। अहो कैसा अनर्थ है!

तुम लोग (हिन्दुस्तानी) अन्य देश वासियों को नीच, म्लेच्छ आदि नामों से संबोधन करते हो और उनसे नफ़रत करते हो, पर राम कहता है कि जिनको तुम नीच समझते हो वह उत्तम हैं, जिनको म्लेच्छ कहते हो, उन का हृदय पवित्र है, और वह तुम से प्रेम रखते हैं। उन लोगों में और भी इतना विशेष गुण है कि उनका देशानुराग इतना प्रबल है कि वे अपने देश के लिये खून बहा देने को हर समय तैय्यार रहते हैं। एक जापानी जहाज़ में कुछ हिन्दुस्तानी

लड़के सफ़र कर रहे थे, वे लोग चौथे दर्जे में थे। चौथे दर्जे वाले मुसाफिरों के लिये हिन्दुस्तानियों के मुआफिक़ खाने का उचित सामान न था। वे लोग भूखे ही रह गये। इतने में एक जापानी लड़के की नज़र उन पर पढ़ गई, उसको मालुम हुआ कि यह बेचारे हिन्दुस्तानी भूखे हैं। उस उदार दयालु जापानी लड़के से न रहा गया, वह फौरन फर्स्ट क्लास (पहिले दर्जे के) कमरे में गया और वहां से फल और मेवे अपने पैसे लगाकर लाया, और उन भूखे हिन्दुस्तानियों के हवाले कर दिये। वह हिन्दुस्तानी लड़के बड़े खुश हुए और उस कृपालु जापानी लड़के को कीमत देने लगे, परन्तु जापानी लड़के ने उचित आश्वासन और मधुर वचन द्वारा सब का सत्कार करके कीमत लेने से इन्कार किया, और फिर उसी तरह चार पाँच रोज़ तक उनको बराबर मेवे और फल देता गया, और कीमत लेने से बराबर इन्कार करता गया। जब उनके जुदा होने का वक़्त आया, तो हिन्दुस्तानी लड़के उसका शुक्रिया अदा (धन्यवाद) करने लगे और फिर कीमत देने लगे, उस जापानी लड़के ने फिर इन्कार किया और नम्रता पूर्वक उन हिन्दुस्तानी लड़कों से कहने लगा कि "प्यारे मैं दाम तो नहीं लेता, मगर एक अर्ज़ करता हूं, यदि तुम इसको स्वीकार करो तो"। हिन्दुस्तानी लड़कों ने कहा "आप फर्माइये तो"। जापानी लड़के ने कहा कि "मेरी यही प्रार्थना है कि जब तुम लोग हिन्दुस्तान को जाओ, तो यह बात न कहना कि जापानी ज़हाज में हम को कष्ट हुआ था, वहां खाने का प्रबन्ध ठीक नहीं था; क्योंकि तुम लोग ऐसा कहोगे, तो हमारे मुल्क की बदनामी होगी।" अहो! कैसी मुहब्बत है! कैसा विमल देशानुराग है! वह लड़का न उस जहाज़ का मालिक था, और न उस जहाज में नौकर था। पर वह जहाज़

जिस देश का था वह भी उसी देश का रहने वाला था, इसी सम्बन्ध से उस जहाज़ की बदनामी को वह अपनी और अपने देश की बदनामी समझता था। यही सच्चा वेदान्त है, इसी को सच्ची "ब्रह्म विद्या" कहते हैं। क्या कोई हिन्दुस्तानी कभी ऐसा करता है? क्या किसी हिन्दुस्तानी ने ऐसा वेदान्त सीखा? क्या तुम में से किसी को इस सच्ची ब्रह्म विद्या की प्राप्तिहु ई? अहो! यहां का वेदान्त, यहां की ब्रह्म विद्या तो केवल वाद-विवाद करने के लिये हैं, अमल में लाने के लिये नहीं। पर याद रक्खो जब तक ऐसी ब्रह्म विद्या अमल में नहीं लाते, तब तक तुम्हारे देश की उन्नति नहीं हो सकती। अफ़सोस! वेदान्त और ब्रह्म विद्या तो हिन्दुस्तान में पढ़ी जायें और जापान और अमेरिका वाले उसको अमल में लावें। अभी रूस जापान के वर्तमान युद्ध में जापान वालों को अपने किसी जहाज़ के डुबाने की ज़रूरत पड़ी। यह निश्चय था कि जो इस ज़हाज़ को डुबाने जायेंगे वह भी डूबेंगें, क्योंकि उसके बचाने के लिये कोई उपाय नहीं था, तो भी ज़हाज़ के कप्तान ने एक नोटिस अपनी पल्टन में फिराया कि "हम अपने जहाज़ को डुबाना चाहते हैं, मगर जो उसको डुबाने को जाएगा उसके बचने का उपाय नहीं, सो इस पर भी जिसको वहां जाना मंजूर हो, वह दरख्वास्त करे"। कप्तान का दफतर का दफतर दर्ख़्वास्तों से भर गया। ऐसा कोई जापानी नहीं था जिसने दर्ख़्वास्त न दी हो। बाज़े २ जापानी ने अपनी अंगुली को काट कर खून से अर्ज़ी लिखी, बाज़ों ने ऐसी धमकी की अर्ज़ी दी कि "यदि हम को न भेजोगे, तो हम फांसी लगा कर मर जावेंगे।" अहो! मरने के लिये ऐसी उत्कंठा क्यों? प्यारो! उस जहाज़ को डुबाने से जापान को लाभ पहुँचता था, मुल्क के

लाभ के मुकाबिले में वे अपने प्राण बिलकुल कुछ नहीं समझते हैं। इधर हिन्दुस्तान में "आप मरा तो जग मरा" की कहावत है। अगर किसी हिन्दुस्तानी से यह कहा जावे कि तुम्हारे मरने से हिन्दुस्तानियों को राज्य मिलता है, तुम मरना स्वीकार करोगे? तो क्या जवाब मिलेगा? यह कि हम मर ही जाएंगे, तो राज्य आने से फ़ायदा ही क्या होगा? उफ़ (हा शोक)! कैसा घृणित स्वार्थ भरा हुआ है? प्लेग से दो लाख से ऊपर आदमी हर एक महिने में मर रहे हैं, हैज़ा आदि अन्य बीमारियों का हिसाब अलग है, पर हिंदुस्तान में ऐसा कोई माई का लाल नहीं है, जो अपने इस क्षण भुंगुर शरीर को अपने देशोपकार रूपी यज्ञ में हवन करदे; अर्थात् देश की भलाई में अपने प्राण न्योछावर करदे, या पसीना ही बहाये, या थोड़ी तकलीफ उठाए। अपने मुल्क के लिये प्राण न्योछावर करना एक तरफ़, पसीना बहाना एक तरफ़, थोड़ी तकलीफ उठाना एक तरफ़ रहा, पर हम लोगों से देश की बुराई न हो, तो उतना ही ग़नीमत है। अभी एक हिन्दुस्तानी लड़का जापान में पढ़ रहा था। एक दिन वह स्कूल-लायब्रेरी (पुस्तकालय) से एक किताब अपने घर पढ़ने को लाया। उस किताब में एक नक्शा था जिसका बनाना उसको अत्यंत आवश्यक था। पर उस लड़के ने उस नक्शे के बनाने की तकलीफ उठानी पसंद नहीं की और उस किताब से वह वर्क़ जिस पर नक्शा बना हुआ था, फ़ाड़ कर अपने पास रख लिया। कितने दिन के पश्चात् एक जापानी लड़के ने वह फटा हुआ वर्क देख लिया। उसने प्रिंसिपल से रिपोर्ट करदी और यह कानून पास होगया कि किसी हिन्दुस्तानी लड़के को लायब्रेरी से कोई किताब घर पर पढ़ने के लिये न दी जावे! अफ़सोस! अपने ज़रा स्वार्थ के लिये, या ज़रा

अपनी तकलीफ को बचाने के लिये उस हिन्दुस्तानी लड़के ने अपने मुल्क के लिये कितना भारी नुक़्सान पहुंचाया है ? तुम लोगों से भी यह ग़लती होनी संभव थी। अहो कैसे शोक की बात है, कि हम लोग अपने तनिक स्वार्थ के लिये या ज़रा तकलीफ से बचने के लिये अपने मुल्क को भारी नुक्सान पहुँचा देते हैं, और फिर आप भी तकलीफ उठाते हैं और नुक़्सान सहते हैं। देखिये, हांगकांग में अंग्रेजों की एक मुसलमानी पल्टन थी। उस पल्टन के सिपाहियों की ४५) रु० माहवारी तनख़्वाह थी। दो सिक्ख सिपाहियों ने जो ९), १०) रुपया माहवारी यहां पाते थे एक अर्ज़ी सरकार को इस मज़मून की दीं, कि यदि हम लोगों की १५) रु० माहवारी तनख्वाह की जाय तो हम लोग खुशी से हांगकांग चले जायेंगे। सर्कार का तो इस में लाभ ही था, सो सर्कार ने उनकी अर्ज़ी मंजूर की और मुसलमानी पल्टन को नोटिस दे दिया कि जो सिपाही १५) रु. में रहना चाहें तो रहें अन्यथा अपना नाम कटा देवें। उस मुसल्मानी पल्टन के किसी सिपाही ने १५) रु० माहवारी में रहना मंजूर नहीं किया और सब ने अपने नाम कटा दिये। पश्चात् उन्होंने विलायत तक इस बात की लिखा पढ़ी की, मगर नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। भला सर्कार को भारी खर्च करने से क्या मतलब था, जब कि थोड़े से खर्च में सर्कार का काम चल जाता था। मज़बूत और बहादुर सिपाही भी मिल गये, ख़र्च भी कम हुआ, तो सरकार ऐसी बेवकूफ क्यों बनती, जो उन मुसल्मान सिपाहियों की अर्ज़ी पर ध्यान देती ? ग़रज़ यहां सिक्ख सिपाही भर्ती हुए और मुसलमान सिपाही सब बर्खास्त हुए। नाउम्मेद (हताश) होकर वह मुसलमान सिपाही आफ्रिका में मुल्लां के देश में चले गये, और उसकी पल्टन में भर्ती होकर उसको अंग्रेजों के विरुद्ध

भड़काने लगे। मुल्ला उनकी पट्टी में आ गया और उसने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई शुरू कर दी। अंग्रेज़ों ने हांगकांग से यही पल्टन सिक्खों की उनके साथ लड़ने के लिये भेजी। उन मुसल्मान सिपाहियों को मालुम होगया, कि उनके मुक़ाबले में वही सिक्ख पल्टन आई है, सो पुराना बैर लेने के जोश में, उन्हों ने खूब बहादुरी से लड़ना शुरू किया। उस सिक्ख पल्टन के कितने ही सिपाही मारे गये, कितने ही ज़खमी हुए, कितने ही उस रेगिस्तान की गर्मी को न सह सकने के सबब मरे, कितने ही बीमार हुए। मतलब यह कि प्रायः सब ही तबाह हुए। प्यारो! देखो, जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है। इन सिक्ख सिपाहियों ने अपने ५) रु० के स्वार्थ से उन मुसल्मान सिपाहियों का ४५) रु० का नुक्सान किया था, उसका इनको यह फल हुआ कि मारे गये, मर गये, जखमी हुए, बीमार हुए और तबाह हुए। उफ (हा शोक)! स्वार्थ कैसी बुरी बला है! यह पहले तो दूसरों को नुक्सान पहुँचाती हैं, और फिर उसका अपना नाश करती है, जो इससे काम लेता है। प्यारो! जैसे इस शरीर के जीवन के लिये हाथ, पैर, नाक, आँख, कान, दाँत, जिह्वा आदि सब ही इंद्रियों की आवश्यकता है, वैसे ही इस संसार के जीवन के लिये भिन्न २ जाति के सब ही मनुष्यों की चाहें वह हिन्दू हैं, या मुसलमान हैं, या ईसाई हैं, या यहूदी अथवा पारसी हैं आवश्यकता है, तब हम दुःख पहुंचावें तो किस को पहुंचावें? नीच समझें तो किस को समझें? स्वार्थ करें तो किससे करें? देखो, यदि आँख यह कहे कि देखती तो मैं हूं और लाभ हाथ वगैरह का होता है, इस लिये देखना बंद करदूं; हाथ कहे कि काम तो मैं करता हूं और मज़ा मुँह उठाता है, इस लिये मैं काम करना छोड़ दूं,

पैर यह कहे कि सारे शरीर का बोझ मैं लिये फिरता हूं, और ये सब मज़े में रहते हैं, इस लिये फिरना छोड़दूं, इसी प्रकार अन्य सब इन्द्रियां कहें और अपना २ काम छोड़दें; तो कहो प्यारों! कैसा जुल्म हो जाय? क्या तब यह शरीर एक मिनट भी रह सकता है? कभी नहीं। देखो अगर आँख यह कहे, कि जिस चीज़ को मैं सुन्दर देखती हूं, उसको मैं अपने ही पास रक्खूं, और वह अपने ही पास रखने की कोशिश करे, तो क्या होगा? पहले तो आँख के अन्दर वह समा ही नहीं सकेगी, यदि कोई छोटी चीज़ हुई तो उस से आँख फूट जावेगी। हाथ यह कहे कि जो चीज़ मैं कमाता हूं, उसको मैं अपने ही पास रहने दूं और अपने को चीर कर या छेद कर उस में रखदूं, तो क्या होगा? वह पक जायगा, सड़ जायगा, और उस में कीड़े पड़ जायेंगे। इसी प्रकार और इंद्रियां भी तकलीफ उठावेगीं। जब यह बात बिलकुल सिद्ध है कि स्वार्थ स्वार्थी को ही कालान्तर में अधिक नुक़्सान पहुँचाता है, तो स्वार्थ से काम क्यों लेना चाहिये? हिन्दुस्तानी लड़के ने स्वार्थ से किताब का वर्क़ (पत्रा) फ़ाड़ा था, उसने खुद नुक़्सान उठाया और अपने मुल्क को नुक़्सान पहुंचाया। सिक्ख पलटन ने अपने स्वार्थ के लिये मुसलमान सिपाहियों को नुक्सान पहुंचाया था, वे खुद तबाह हुए। कहां तक कहें, स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ के लिये खुद नुक्सान उठाया और मुल्क को कितना नुक्सान पहुँचाया है। इस बात की सैकड़ों मिसाले हिन्दुस्तान के इतहास में मौजूद हैं। कौरव पांडवों का सत्यानाशी युद्ध होना, मुसलमानों का हिन्दुस्तान में राज्य होना, शाहजहां के लड़कों का आपस में लड़ना, मुसलमानी बादशाहत का नाश होना, अंगरेजों का हिन्दुस्तान में राज्य की जड़ जमाना, मरहठों का

त्तय, सिक्खों का नाश, अंगरेज़ों का तमाम हिन्दुस्तान का बादशाह होना, आदि इन सब बातों पर यदि नज़र डालोगे, तो मालुम होजावेगा, कि हम हिन्दुस्तानी लोगों के स्वार्थ से यह सब कुछ हुआ है। अगर हम लोगों में स्वार्थ न भरा हुआ होता, तो हिन्दुस्तान आज परदेशियों के पाँव पर न लोटता! ओह! स्वार्थ ने तुमको किस दशा से किस दशा को पहुंचा दिया है? स्वर्ग से तुमको रसातल में फेंक दिया, इन्सान से तुमको हैवान (पशु) बना दिया, शेर से तुम को गीदड़ बना दिया हैं। तो क्या प्यारो! अब भी तुम उस को नहीं छोड़ोगे?

हिन्दुस्तान में स्वार्थ का हमेंशा से घर नहीं है। यदि तुम अपने पूर्व पुरुषों के जीवन-चरित्र पर एक बार दृष्टि डालोगे, तो मालुम हो जावेगा कि जिन ऋषियों की तुम औलाद (सन्तान) हो, वे कैसे निस्वार्थी होते थे। दूसरे की भलाई, के लिये, दूसरे के उपकार के लिये, वे महात्मा कैसे तन मन धन न्योछावर करते थे? और अपनी जान की परवाह नहीं करते थे। शरीर का मांस, शरीर की हड्डी तक दूसरे की भलाई के लिये देदेते थे। जब तक हिन्दुस्तान में ऐसे पुरुष होते रहे, तबतक हिन्दुस्तानी लोग चक्रवर्ती राज्य भोगते रहे, तब तक हिन्दुस्तान संसार में शिरोमणि गिना जाता रहा। पर जब से इस स्वार्थ रूपी बला ने हिन्दुस्तान को घेरा है, तब से हिन्दुस्तान का पलड़ा उलट गया। सो यदि तुम फिर सम्हलना चाहते हो, तो एक दम से इस स्वार्थ को हिन्दुस्तान से निकाल दो। मरते तो सब हैं, किन्तु हम लोग सिर्फ काल वश ही मरते हैं, और प्रकार से हम मरना नहीं जानते। मरना जानते हैं जापान वाले, अमेरिका वाले और यूरोप वाले, सो हम लोगों को भी उनसे मरना

सीखना चाहिये। अमेरिका में एक दफ़े सायंस की तरक्की के लिये आवश्यकता हुई कि एक आदमी ज़िन्दा चीरा जाय, ताकि यह मालूम हो कि खून की हरकत किस वक्त किस नस में कैसी होती है। मरे हुए आदमी को चीरने से यह बात मालुम नहीं हो सकती थी, क्योंकि मरे हुए आदमी में खून की हरकत नहीं होती। सो एक आदमी इस बात के लिये तैयार हो गया और वह चीरा गया! एक दफ़ा आँख के अन्दर के पड़दों के विषय में जानने की ज़रूरत हुई, एक आदमी ने अपनी आँख चिरवाई। तो क्या प्यारों! उन लोगों ने अपने फ़ायदे के लिये अपने शरीर व आँख को जिन्दा चिरवाया था? नहीं, सिर्फ मुल्क के फायदे के लिये। उनका सिर्फ यह उच्च ख्याल था, कि हमारा यह नाशमान् शरीर मुल्क के काम आवेगा, तो इससे उत्तम सद्गति और क्या हो सकती है? हमारा शरीर व आँख चीरी जायगी, तो यह डाक्टर लोग इस बात को सीख जाएेंगें, जिसको बिना सीखे यह लोग दूसरे के शरीर व आँख को पूरा २ फ़ायदा नहीं पहुँचा सकते हैं, तब यह लोग पूरा २ फ़ायदा पहुँचा सकेंगे, और हमारा शरीर और आंख जिनसे अभी तक केवल हमारा ही फायदा हुआ है, अब से प्रत्येक आदमी के शरीर और आँख के फायदे के लिये होंगे, अर्थात् हमारा शरीर और आँख सब के शरीर और आँख के साथ मिल जाएंगे। अहो! क्या ही उत्तम ज्ञान है। प्यारो! तुम को भी यह ज्ञान सीखना चाहिये। जब तक तुम को ऐसा ज्ञान नहीं होता, तुम्हारी हरगिज़ तरक्की नहीं हो सकती।

यह बात भी नहीं है, कि वे लोग आदमियों को ही मुहब्बत करते हैं, किन्तु मांसाहारी होने पर भी वे प्राणी मात्र को मुहब्बत करते हैं। अमेरिका का प्रेसीडेन्ट (राष्ट्रपति) एक

दफे दर्बार को जाता था। रास्ते में उसने देखा कि एक सूअर कीचड़ में फँसा हुआ है। वह सूअर निकलने की जितनी ही ज्यादा कोशिश करता था, उतना ही वह अधिक कीचड़ में फँसा जाता था। प्रसिडेन्ट से न रहा गया, वह दर्बारी कपड़ों सहित, जिनको वह पहरे हुए था, कीचड़ में कूद पड़ा और सुअर को निकाल लाया। पश्चात् वह कीचड़ से भरे हुए कपड़ों को पहिने हुए ही दर्बार में चला गया। राष्ट्रपति की यह कैफियत देखकर दर्बारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे राष्ट्रपति से नम्रता पूर्वक इस विषय में दर्याफत करने लगे। राष्ट्रपति ने सारा क़िस्सा वयान किया। दरवारी लोग वड़े खुश हुए और हज़ार मुखसे प्रेसिडेन्ट साहिब की प्रशंसा करने लगे। कुछ कहने लगे, कि हमारे प्रेसिडेन्ट साहिब ऐसे मेहरवान (कृपालु) हैं, कि सुअर पर भी महरवानी (कृपा) करते हैं। और कोई कुछ कहने लगा और कोई कुछ। प्रेसिडेन्ट ने कहा कि मेरी झूठमूठ प्रशंसा क्यों करते हो? मैं ने सुअर पर दया नहीं की, किन्तु उसको कीचड़ में वेतरह फँसा हुआ देखकर मुझे दर्द हुआ था, मैं ने उस दर्द को मिटाया है, मैं ने सुअर के साथ भलाई नहीं की हैं, किन्तु अपने साथ भलाई की है क्योंकि उसके फँसने पर जो दुःख मुझे हुआ था वह उसको निकालने से निकल गया अर्थात् दूर होगया। अहा! सच्चा वेदान्त का यह क्या ही जीवित नमूना है, कि प्राणीमात्र के दुःख को अपना दुःख समझना, और प्राणीमात्र पर दया करने से अपने ऊपर दया होती समझना और प्राणी मात्र का दुःख दूर करने से अपना ही दुःख दूर समझना। क्या कोई हिन्दुस्तानी राजा, रईस, अमीर होता, तो वह उस सुअर को कीचड़ से निकालता? कभी नहीं। तो विचार करो कि "प्राणी मात्र पर दया करना" जो तुम्हारा मुख्य धर्म हैं, सो तुम अपने इस उदार धर्म से

कितना भ्रष्ट हुए हो ? धर्म भ्रष्ट तो हुए। पर धर्म भ्रष्ट होने से जो सज़ा मिलती है वह प्यारो ! तुमको मिल रही है। और तब तक इस सज़ा से वरियत (छुटकारा) नहीं पा सकते हो, जब तक कि फिर उस उदार धर्म (प्राणी मात्र पर दया करना) के अनुसार अपना आचरण नहीं वनाते।

मुसलमानी बादशाही के ज़माने में अंग्रेज़ लोग जब हिन्दुस्तान में केवल सौदागर थे, फरुर्खसियर बादशाह की लड़की बीमार हुई। हिन्दुस्तानी वैद्य, हकीम इलाज करते २ थक गये, परन्तु शाहज़ादी को आराम न हुआ। इत्तिफ़ाक से अँगरेज़ डाक्टर आया हुआ था, उसने दवा की, और दवाई से वह अच्छी होगई। बादशाह बड़ा खुश हुआ, और डाक्टर को बड़ाभारी इनाम, खिलत और जागीर देने लगा। डाक्टर ने अर्ज़ की, कि जहाँपनाह ! मैं कुछ नहीं लेना चाहता; मगर हजूर खुश हैं, तो अंगरेज़ सौदागरों के माल पर महसूल मुआफ़ फर्माया जाय। ऐसा ही हुआ। अंग्रेज सौदागरों के माल पर महसूल मुआफ़ हुआ। अंग्रेज़ डाक्टर ने अपने फायदे पर ख्याल न किया, किन्तु अपने मुल्क के फायदे पर किया। यदि वह अपने फ़ायदे पर ख्याल करता और बादशाह के भारी इनाम को ले लेता, तो थोड़े दिनों के लिये वह अमीर हो जाता, पर जब उसने मुल्क का ख्याल किया, तो उसका सारा मुल्क ही अमीर होगया। क्या हिन्दुस्तानी से कभी यह उम्मेद हो सकती है ? ओह उन लोगों में कैसा प्राकृतिक वेदान्त है। तब वे लोग तरक्की न करेंगे तो कौन करेगा ? इधर हिन्दुस्तानियों पर तो ठीक यह मिसाल चरितार्थ होती है, कि एक साधु ने किसी आदमी को एक चीज़ दी। उस चीज़ का यह गुण था कि वह आदमी उस

चीज़ से जो कुछ मांगे, वह उसको मिल जायगा, मगर उस के पड़ौसी को उससे दूना मिला करेगा। उस आदमी ने धन मांगा, हाथी घोड़ मांगे, गाय भैंस मांगी, और जो कुछ मांगा वह सब उसको मिलगया, मगर उसके पड़ोसी को उससे दूना मिला। पढ़ोसी को दूना मिलने पर वह बहुत जलता रहा। एक दिन वह यह बात सोचता रहा कि इस चीज़ से क्या मांगे जो पड़ोसी को दूना मिलने पर उसका अधिक नुक्सान हो। सोचते २ उसके ख्याल में यह बात आई कि अपनी एक आँख फूट जाय, इस लिये यही माँगना चाहिये कि मेरी एक आँख फूट जाय, क्योंकि तब पड़ोसी की दोनों आँख फूट जायंगी। उसने ऐसा ही किया। उसकी एक आँख और पड़ोसी की दोनों आँख फूट गईं, फिर उसने अपने एक हाथ और एक पाँव टूटने के लिये उस चीज़ से अर्ज़ करी। उसका एक हाथ और पाँव टूट गया और उसके पड़ोसी के दोनों हाथ और पाँव टूट गये। इत्तफाक़ से उसको लकवा हुआ, और उसके रहे सहे हाथ पैर भी टूट गये, और आँख भी फूट गई। तब उसने उस चीज़ से दोनों हाथ, पैर, और आँख मांगी, पर यह प्रार्थना अस्वीकर हुई, क्योंकि पड़ोसी को उससे दूना मिलना था, मगर उसके चार हाथ, पाँव और आँख नहीं थीं। तब उसने लाचार होकर अपनी एक आँख, हाथ पाँव के अच्छे होजाने की प्रार्थना की, यह स्वीकर हुई। उसके एक हाथ पाँव और आँख अच्छे हो गये और पड़ौसी के दोनों। पड़ोसी जैसा का तैसा होगया, मगर उस कमबख्त (दुर्भागी) के एक आँख फूटी की फूटी रहगई, और एक हाथ पाँव टूटे के टूटे ही रह गये। सो प्यारो! विचार करो जो अपने पड़ोसी की बुराई करता है, उसके लिये खुद बुरा होता है। पड़ोसी अपने मुल्क वालों

को कहते हैं, सो अपने मुल्क की बुराई नहीं करनी चाहिये। बाइबिल में लिखा है कि अपने पड़ोसी को अपने बराबर प्यार करो, यद्यपि तुम्हारे शास्त्रों में और भी उदारता पाई जाती है, क्योंकि उनमें सारे जगत् को अपने बराबर प्यार करना लिखा है। बाइबिल के मानने वाले तो बाइबिल में लिखी हुई बात को अक्षर २ मानते हैं, और तुम लोग अपने शास्त्रों में की लिखी हुई इस बात को कि जगत् को अपने बराबर प्यार करो, एक हिस्सा नहीं मानते ! यह कितनी लज्जा की बात है ? प्यारो ! जगत् को अपने बराबर प्यार नहीं कर सकते हो तो अपने मुल्क को तो अपने बराबर प्यार किया करो। मुल्क को नहीं कर सकते हो तो अपने कुटुंब को तो प्यार करो। यह क्या बात है कि तुमने अपने कुटुम्ब ही में भेद कर रक्खा है। अपने कुटुम्ब से भी अगर तुम भेद न रखते, तो तुम एक दम इतना नीचे न गिरते और तुम्हारी दशा का चक्र यकायक ऐसा पलटा न खाता।

भेद भाव (द्वैत भाव) उन्नत्ति के मार्ग में बड़ा ही अनिवार्य तीक्ष्ण काँटा है। क्योंकि परमेश्वर ने इस दुनिया में जितने पदार्थ बनाए हैं, उनसे यथार्थ लाभ उठाना ही मनुष्य की पूरी २ उन्नत्ति की अन्तिम सीमा है, परन्तु यह भेद (द्वैत भाव) का काँटा मार्ग में आ पड़ता है, और उस अन्तिम सीमा तक पहुँचने नहीं देता। यह किसी चीज़ को अग्राह्य, किसी को स्पर्शनीय, किसी को घृणित, किसी को नीच और किसी को आदर्शनीय समझाता है। पर ऐसा समझना सर्वथा अज्ञान है, क्योंकि ऐसा समझने से उन चीज़ों से हम परहेज़ करने लगते हैं। फिर उनसे कोई न कोई होनेवाला लाभ, जो हमारी उन्नति का सहायक होता, नहीं हो सकता। इसलिये हमारी

उन्नति में उतनी कमी पड़ती है, और यह कमी हमको उन्नति की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचने देती। यह कमी किसी और प्रकार से भी पूर्ण नहीं हो सकती, चाहे उसमें कितना ही सादृश हो। गाय के दूध से हम को जो लाभ होता है, वह भैंस या बकरी के दूध से नहीं होता, और बकरी के दूध से जो लाभ होता है, वह गाय के दूध से नहीं होता; अतएव हम को अपनी पूरी २ उन्नति करने के लिये, ईश्वर रचित हर एक पदार्थ की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। और वह सहायता हम तब ही प्राप्त कर सकेत हैं जब भेद भाव का सर्वथा नाश होजाय। हिन्दुस्तान में भेद की बड़ी प्रबलता पाई जाती है, अमेरिका, जापान आदि में उतना भेद नहीं पाया जाता। यह कारण है कि हिन्दुस्तान उन्नति में इतना पीछे पड़ा हुआ है। और अमेरिका जापान आदि इतना आगे बढ़े हुए हैं। हिन्दुस्तान में जिन चीज़ों की क़दर नहीं होती, जिन चीज़ों से कोई लाभ होने की आशा नहीं समझी जाती, अथवा जिन चीज़ो को छूने तक का इतना परहेज़ होता है, कि गंगा-स्नान की ज़रूरत पड़ती है, उन चीज़ों से अमेरिका आदि मुल्कों वाले आशातीत लाभ उठाते हैं। गधा और सुअर जो हिन्दुस्तान की नज़र से विलकुल घृणित हैं, अमेरिका में बड़े काम आते हैं। मैला, जिसकी तरफ नज़र पड़ने से ही कै (वमन वा उलटी) होजाती है, अमेरिका में अच्छी व्यापारिक चीज़ है। हड्डी जिसके छू जाने मात्र से स्नान की ज़रूरत होती है इतने फायदे की चीज़ है कि सारी दुनियां को लाभ पहुंच रहा है। इसकी खाद जिस खेत में पड़ती है, वहां चौगनी फसल पैदा होती है; इससे जो फास्फोरस निकलता है, वह संसार को लाभ पहुंचा रहा है। दियासलाई इसकी बनती हैं, और पुष्टि कारक उत्तम

दवा भी इसी से बनती हैं। बाल जिसको तुम तुच्छ (नाचीज़) समझकर फेंक देते हो, उस से अमेरिका में खूब पैसा पैदा होता है। इसी प्रकार सब चीज़ें, जो हिन्दुस्तान की नज़र से घृणित, अपवित्र और अयोग्य समझी जाती हैं, उनसे दूसरे मुल्क वाले खूब फायदा उठाते हैं, और उनसे खूब कमा लेते हैं। उन मुल्कों में जब ऐसी २ चीज़ों से भी फ़ायदा उठाते हैं और काम लेते हैं, अफसोस, हिन्दुस्तानी तो साधू लोगों से भी काम लेना नहीं जानते! हज़ारों, लाखों साधू पड़े हुए हैं, यदि उनसे काम लेते, अथवा उनसे फायदा उठाने की बुद्धि हिन्दुस्तान को होती, तो हिन्दुस्तान का बड़ा भारी उपकार होजाता।

एक समय था जब हिन्दुस्तानी लोग मनुष्यों के अलावा जानवरों से भी मनुष्य का काम ले लेते थे। भगवान् रामचन्द्र जी ने बन्दरों की सेना बनाई थी, और ऐसी कामयाबी हासिल की थी कि आज कल के हिन्दुस्थान के मनुष्यों की सेना से भी वह कामयाबी हासिल नहीं होती। यदि रामचन्द्र जी बंदरों को बन्दर कहकर ही ख्याल न करते और उन से भेद भाव रखते, तो रामचन्द्र जी को कितनी कठिनता उपस्थित होती। एक बलवान शत्रु के साथ मुकाबला था, जिस की असंख्य सेना थी, जिसकी धाप सुन कर ही तमाम भू-मंडल कलेजा थाम कर रह जाता था। रामचन्द्र जी के साथ सिवाय भाई लक्ष्मण के न सैना थी और न खज़ाना था। यदि आदमियों की पलटन भर्ती करते, तो इतना धन कहाँ से आता? वह तो राज-भ्रष्ट और तिस पर बन बासी, सेना को तनख्वाह देनी पड़ती, कमसरियेट का बन्दोबस्त करना पड़ता; तीर, कमान, गोला बारूद का सामान करना

पड़ता। पर प्यारों ! इनकी ज़रूरत तो उनके लिये है, जिनकी दृष्टि में भेद है। रामचन्द्र जी को तो सच्ची ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति हुई २ थी, भेद-भाव का सर्वथा अभाव था। उनकी नज़र में आदमी और बंदरों में भेद नहीं था। और यह कुदरत का क़ानून है कि जिस में भेद-भाव (द्वैत भाव) का अभाव हो जाता है, उस के साथ सारी कुदरत भी भेद नहीं रखती, अर्थात् उसको अपना मित्र समझती है, और हर प्रकार उसकी सहायता करती है। सुतरां बन्दर रामचंन्द्र के मित्र हो गये, और बंदरों की एक बड़ी भारी सेना रामचंद्र जी के लिये मरने मारने को खड़ी हो गई। उनको न तनख्वाह की जरूरत, न कपड़ों की जरुरत, न अन्न की जरूरत, न तीर कमान की जरूरत हुई। ऐसी सेना तय्यार करके चढ़ाई करदी गई, और फ़तेह पाई। ओह ! ब्रह्म-विद्या में कैसा जादू का असर है कि पशुओं और पत्थरों से भी वह काम लिया जा सकता है जो असंभव प्रतीत होता है। अतः तुम भी सच्ची ब्रह्म-विद्या के प्राप्त करने का प्रयत्न करो, क्योंकि अपनी पूरी २ उन्नति के लिये हर एक चीज़ की सहायता की आवश्यकता है। और तब तक तुम हर एक चीज़ से सहायता नहीं ले सकते, जब तक कि उन से भेद रखते हो, या प्रेम नहीं करते, अर्थात् उनको अपने ही बराबर नहीं समझते। और तब तक तुम्हारा भेद दूर नहीं होगा, उन से प्रेम नहीं होगा, और उन सब को अपने बराबर समझना नहीं होगा, जब तक कि ब्रह्म-बिद्या का प्रकाश तुम्हारे हृदय में नहीं होता। सच्ची ब्रह्मबिद्या के प्रकाश होने से तुम हर एक चीज़ से मुहब्बत (प्रेम) करने लगोगे, और उन में जो गुण हैं, जिनके बिना तुम्हारी उन्नति का मार्ग अगम्य हो रहा है, उन को लेने में संकोच नहीं करोगे, और तब तुम्हारी

उन्नति बेरोक टोक होती चली जायगी, और तुम जो कुछ अपना खो चुके हो, वह सब कुछ तुमको मिल जायगा, और तुम्हारी उस शोचनीय दशा का पलड़ा एक दम पलट जायगा।

हम लोग गुण नहीं देखते, और गुण सबसे लेना चाहिये, चाहे आर्य हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, ब्राह्म हो, या और कोई हो, क्योंकि गुणों की कमी सब को है। क्या कोई आर्य, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्म या और कोई मज़हब वाला यह कह सकता है कि हम सर्व गुण सम्पन्न हैं? हम को किसी से किसी गुण के सीखने की आवश्यकता नहीं है? यदि कोई ऐसा कहता है, तो वह झूंठ कहता है, क्योंकि सब गुण सम्पन्न जाति कभी ऐसी बुरी दशा में नहीं रह सकती है। और तुम में से प्रत्येक व्यक्ति की जैसी बुरी दशा है, वह छिपी हुई नहीं है। सुतरां तुम में एक नहीं वरन् कितने ही ऐसे बुरे दोष भरे हुए हैं, कि जिनसे तुम्हारी उन्नति रुकी हुई है।

हां बिलकुल गुण रहित जाति भी कोई नहीं होगी, कम से कम कोई न कोई गुण प्रत्येक जाती में ऐसा है, कि जो दूसरी जाति को सर्वथा अनुकरणीय है। सो परस्पर एक दूसरों के गुणों को ग्रहण करने में त्रुटि नहीं करनी चाहिये। उन्नति का सब से उत्तम तरीक़ा यही है कि गुण सब से लेवे। अफसोस! हिन्दुस्तानी लोग इस तरीक़े को नहीं वर्तते, निरर्थक झगड़े, फ़साद और वादविवाद में अपना समय खोते हैं। आज शास्त्रार्थ हुआ, आज आर्यों की खूब पोल खोली गई, आज मुबाहिसा हुआ, आज हिन्दु धर्म

का पक्का खण्डन हुआ, आज मुसलमानों के खूब धुर्रे उड़ाये गये, आज जैनियों का परदा फाश हुआ। वाह भाई, वाह! कैसी उम्दा दलीलों से अमुक साहिब ने आज अमुक मज़हब का खण्डन किया? प्यारो! इन व्यर्थ के वाद विवादों से क्या फ़ायदा हुआ और होगा, सिवाय इसके कि आपस में रञ्ज पैदा हो, दुश्मनी बढ़े, और लोगों के दिलों पर बुरा असर पैदा हो। ओह! कैसे रंज की बात है कि तुम लोग मज़हब को खण्डन करने की नियत से तो उस मज़हब की किताबों को खूब ध्यान देकर पढ़ते हो, ताकि उन किताबों में जो कुछ दोष हो, वह तुम को मालूम हो जाय, और तुम उन दोषों को सरे-आम कह कर उस मज़हब वालों को मियाओं कर जाओ, पर कभी दूसरे मज़हब की किताबें उस नियत से नहीं पढ़ते कि उनमें से जो अच्छी बातें हैं उनको सीखो, और अपनी उन्नति करो। तुम लोग जोंक की तरह हो गये हो, जो स्तनों पर लगा देने पर भी दूध को छोड़ देती हैं, या कभी नहीं पीती, और हमेशा खून को पीआ करती हैं। यह मज़हबी झगड़ा हिन्दुस्तान में यक क़लम (तत्काल) बन्द होना चाहिये। यह तुम्हारी उन्नति का बड़ा ज़बरदस्त दुश्मन है, क्योंकि इन झगड़ों से आपस में रंज पैदा होता है, रंजके होने से दुश्मनी पैदा होती है। जब दुश्मनी हुई, तो आपसमें प्रेम कहां! और जब प्रेम नहीं, तो प्यारो! आपसमें एक दूसरे की सहायता नहीं होती, विना परस्पर की सहायता के किसी की उन्नति न हुई, न होगी। यदि अपनी उन्नति चाहते हो, तो पहले अपना एक दिल करो, अथवा अपना वह दिल बनाओ, जो उन्नति पाने वालों ने बनाया है। यदि लैला पाने की इच्छा रखते हो, तो मजनूं बनो, अर्थात् मजनूं का सा दिल बनाओ। खाली जुबान से यह कह देना कि मैं मजनूं हूं, मुझे

लैला मिल जाय, काफ़ी नहीं है। तुमको सबूत देना होगा कि तुम में और मजनूं में कोई फ़र्क नहीं है, तात्पर्य मजनूं ने लैला के लिये जितनी तकलीफें उठाईं, वह सब तकलीफें उसी के माफिक तुमको उठानी होंगी। लैला का लोभ देकर चाहे तुम्हारा शरीर चीरने के लिये कहा जाय, तो तुमको खुशी से शरीर चिराना होगा; यदि तुमको नदी में डूब मरने को कहा जाय, तो तुमको नदी में डूब मरना होगा; यदि आग में जल मरने के लिये कहा जाय, तो तुमको आग में जल मरना होगा; तुमको लैला के लिये जँगल, पहाड़, रेगिस्तान में घूमने के लिये कहा जाय, या न कहा जाय, घूमना होगा; तुमको ऊँच नीच का बिचार न करना होगा; ग़र्ज़ यह है कि जब तक तुम्हें लैला नहीं मिलती, तब तक हज़ारों तकलीफें उठानी पड़ेंगी, और उन तकलीफों पर ध्यान न देना होगा। इसी तरह पर प्यारों! तुमको अपने मुल्क की उन्नति के लिये क्या नहीं करना होगा, तकलीफें उठानी पड़ेंगी; दुःख सहना होगा; जंगल, जंगल, पहाड़, पहाड़ में भटकना होगा; ऊंच नीच का विचार नहीं करना होगा; और अपने शरीर को होम कर देना होगा। जब ऐसा करने के लायक होंगे, अथवा तैय्यार होंगे, तो स्वतः ही तुम्हारी उन्नति होगी। तुम्हारे मुल्क की उन्नति होगी और सारे संसार की होगी, क्योंकि ऐसा करना ही सच्ची ब्रह्म-विद्या है, और सच्ची ब्रह्मविद्या ही से अपनी और संसार की उन्नति होती है।

जब अपनी जाति का ख्याल दृढ़ हो जाता है, तब किसी बात की कमी नहीं रहती है। यह कहने का मौका नहीं रहता है कि हमारे पास रुपया नहीं है, हम कुछ नहीं कर सकते। जापान वालों ने बिना रुपये खर्च किये ही परदेशों में जाकर

इल्म हासिल किया है, और अपने मुल्क की तरक्क़ी की है। उन लोगों ने यह तरीक़ा अख्त्यार किया है। जब वे दूसरे मुल्कों को विद्या हासिल करने के लिये जाते हैं, तो अपने साथ कुछ इस लिये नहीं ले जाते, कि अपना रुपया परदेश में नहीं जाना चाहिये, अपने मुल्क में ही रहना चाहिये। जब राम जापान से अमेरिका जाने के लिये जहाज़ में सवार हुआ, तो राम ने देखा कि ४० जापानी लड़के भी अमेरिका जाने के लिये जहाज़ में सवार हुए हैं। उन लड़कों के पास न कुछ खर्च था और न जहाज़ का किराया। उन लड़कों में बहुत से तो अमीर घर के थे, और बहुत से गरीब घर के। पर खर्च किसी के पास नहीं था। धन्य जापान! तुम लोगों में कितना स्वदेशानुराग है? तुम लोगों में कैसी बुद्धी है? "अपने देश का रुपया परदेश में न जाय" इस बात का तुमको कितना ख्याल रहता है, और इस लिये तुम कितनी तकलीफ उठाते हो, खर्च न ले जाने की वजह से उन लोगों ने जहाज़ की नौकरी करली। कोई मशालची हुआ, कोई भिस्ती हुआ, कोई झाड़ू देने वाला हुआ, कोई कोयला झोंकने वाला हुआ, ग़र्ज़ सबके सब लड़के जहाज़ में नौकर हो गये, और इस तरह सब लोग जहाज के किराये से बच गये। अमेरिका पहुंच कर उन्होंने जहाज़ की नौकरी छोड़ दी और ४ डालर देकर अमेरिका में रहने का पास ले लिया। अमेरिका में यह दस्तूर है, कि ग़ैरमुल्क वाला जो वहां उन के देश में जाता है, उस को वह जहाज से तब उतरने देते हैं जब कि उस के पास ४० डालर देख लेते हैं। वह लड़के वहां इल्म सीखने गये थे, पर खर्चा तो वह ले ही नहीं गये थे, कालेजों में वह किस तरह भरती होते? सो उन्होंने वहां मज़दूरी करनी शुरू की। किसी ने हल लगाना शुरू किया,

किसी ने और मज़दूरी अख्त्यार की। वहां मज़दूरों को छः रुपया रोज तक मज़दूरी के मिलते हैं। अतः वह लड़के मज़दूरी करके खूब रुपया पैदा करने लगे। अमेरिका में मज़दूरों के पढ़ने के लिये रात के स्कूल (night schools) हैं, क्योंकि जो आदमी ग़रीब हैं और वह दिन के स्कूल में नहीं पढ़ सकते हैं, उन्हीं के उपकार के लिये रात के स्कूल का प्रबन्ध है, ताकि अपने गुज़ारे के लिये दिन में मज़दूरी करें, और रात में पढ़ें। बहादुर जापानी लड़के भी उन्हीं रात के स्कूलों में भरती हुए। सो वह रात को इल्म हासिल करने लगे, और दिन में रुपया कमाने लगे। जब उनके पास कुछ रुपया जमा होगया, और अंग्रेजी भी वह बोलने समझने लगे, तब कालेज में भरती होगये। जापानी लोग जिस मुल्क में जाते हैं, उस मुल्क की भाषा वह उसी मुल्क में जाकर पढ़ते हैं। सो वह मुख्तलिफ क़िस्म के इल्म पढ़ने लगे। पश्चात् पास होकर अपने देश को आये, और इल्म के साथ साथ रुपया पैदा करके लाये। यह देखो, जापानियों की बुद्धि, स्वदेशानुराग, और कष्ट-साहिष्णुता कैसी अनुपम है ! स्वदेशानुराग, कि अपने देश का धन अपने ही देश में रहे, यहां तक कि अपने फ़ायदे के लिये भी यदि दूसरे मुल्क में जाना पड़े, तौ भी जहाज़ रेल के किराये में भी अपना रुपया परदेश में न जाय, और कालेजों की पढ़ाई का खर्च तो अलग रहा, वरन् अपने देश के पैसे से एक किताब तक भी न खरीदी जाय; खाने पीने में अपना पैसा खर्च करना तो अलग रहा, उलटा वहीं से पैदा करके अपने मुल्क को रुपया एकत्र करके लाया जाय; और अपने मुल्क की भलाई के लिये सब से बड़ी बात यह की जाय कि दूसरे मुल्कों से वह "आला इल्म" (उत्तम विद्या) सीख कर आय कि जिसकी

अपने मुल्क में निहायत जरूरत है, और जिस पर अपने देश की उन्नति निर्भर है। बुद्धि, कि वह लोग कैसे जल्दी उस तरीक़े को सोच लेते हैं जिससे उनकी उन्नति हो। किराया से बचने के लिये ही उन्हों ने कैसा अनोखा कौशल किया था कि सफर भी होगया, किराया भी न पड़ा, उलटा कुछ रुपया हाथ आगया! हम को संदेह है कि दुनियां के किसी और मुल्क के आदमियों की ऐसी बुद्धि हो। भला दुनियां में ऐसा कौन मुल्क है जिसने पचास वर्ष के अन्दर ऐसी आशातीत उन्नति की हो, जैसे जापान ने की है? यही उनकी विचित्र बुद्धि का अनुपम दृष्टांत है। यह उनके असली वेदान्ती होने का सुखद सुधामय मधुर फल है। कष्ट-सहिष्णुता, कि अमीरों के लड़के भी झाड़ू वगैरा नीच, और खेती वगैरः मुश्किल काम करने में न शर्मिन्दा हों, और न तकलीफ़ समझें, किन्तु दिन में खेती वगैरा की कठिन मेहनत करें और रात में करें गंभीर पढ़ाई, यानी शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम करें, और कभी न थकें! प्यारो! जापान में ऐसा देशानुराग है, ऐसी विचित्र बुद्धि है, ऐसी कष्ट-सहिष्णुता है, तब जापान जैसी और जितनी चाहे, वह वैसी और उतनी ही तरक्क़ी कर सकता है। उधर जब जापान के लोग अपने मुल्क की उन्नति के लिये ऐसे २ यत्न और विचारों से काम ले रहे हैं, इधर तब हिन्दुस्तान के लोगों की अजब कैफ़ियत है। पहले तो दूसरे मुल्कों को जाना ही हिन्दुस्तान की नज़र में पाप है, तिस पर भी यदि किसी ने हिम्मत की और उसको पाप न समझा, तो उसको आला दर्जे का सामान चाहिये। वह जापानियों की तरह मज़दूर होकर कभी दूसरे मुल्क नहीं जायगा। उसके लिये जहाज़ में अव्वल नम्बर का कमरा और

सामान चाहिये। वह जापानियों की तरह दिन में खेती कर के और रात को पढ़कर इल्म हासिल नहीं करेगा। किन्तु उसके लिये फीस, खाने पीने के खर्च के लिये कम से कम १५ हजार रुपया चाहिये। वह जापानियों की तरह उस मुल्क से इल्म के साथ २ रुपया पैदा करके तो नहीं लावेगा किन्तु पहले तो इल्म भी अधूरा लावेगा, यानी उसमें पास नहीं होगा, और पन्द्रह हज़ार रुपये के अलावा और कई हजार क़र्ज़ करके भी लावेगा। वह जापानियों की तरह उस मुल्क से वह इल्म पढ़कर न लावेगा जिसकी अपने मुल्क में निहायत ज़रूरत है जिस से अपने मुल्क के गरीब व अमीर को फायदा पहुंचे, किन्तु वह इल्म सीख कर आवेगा जिस की अपने मुल्क के लिये कोई जरूरत नहीं; और जिस से अपने मुल्क के अमीर और गरीब सब तबाह हों! यानी वहां से वारिस्टर बनकर आवेगा और गरीब अमीरों को लड़ा कर उनका रुपया खूब उड़ावेगा! उन रुपयों को यदि अपने ही घर में जमा रखता, तो कुछ न कुछ अच्छा ही था; पर वह उन रुपयों को अपने साहिबाना ठाठ रखने में खर्च करेगा और साहिबाना ठाठ के लिये बिलकुल विलायती चीज़ की ज़रूरत है, कमरा सजाने के लिये विलायती सामान, पहरने के लिये विलायती कपड़ा, खाने के लिये विलायती खाना बोलने के लिए विलायती भाषा, कहां तक कहें जूता विलायती, कुर्ता विलायती, चाल चलन विलायती, सो सब रुपया जो वह कमाता है, वह विलायती हो जाता है। इस तरह पर जो हिन्दुस्तानी विलायत गया भी, तो उससे विलायत का ही फायदा होता है हिन्दुस्थान का तो नुकसान ही है। इस के अतिरिक्त वह विलायत से लौट कर जापान वालों की तरह कभी मुल्क वालों को प्यार नहीं करेगा बल्कि अपने

मुल्क वालों को असभ्य, बेवकूफ और जंगली ख्याल करेगा और उनके साथ उठने बैठने व बोलने चालने में भी शरम मानेगा, तो कहिये हिन्दुस्तान की किस तरह तरक्की हो?

हिन्दुस्तान की तरक्क़ी के लिये इस बात की जरूरत नहीं है, कि हिन्दुस्तान के लोग विलायत में जाकर बैरिस्टरी पास करके आवें, किन्तु इस बात की ज़रूरत है कि वे लोग कृषी विद्या सीख कर आवें और हो सके तो और हुनर भी सीख करके आवें, जिससे अपने मुल्क को फ़ायदा हो, अपने मुल्क का पैसा अपने मुल्क ही में रहे, और दूसरे मुल्क का भी रुपया अपने मुल्क में आवे। दूसरे मुल्क का रुपया इस मुल्क में तबही अधिक आवेगा जब कृषी विद्या की तरक्क़ी होगी। और २ हुनरों में हिन्दुस्तान दूसरे मुल्क की बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि दूसरे मुल्कवाले उन बातों में बहुत बढ़ गये हैं, कृषी विद्या से हिन्दुस्तान की आमदनी का सिलसिला बढ़ सकता है, सो हिन्दुस्तान के लिये कृषी विद्या की ओर विशेष ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है। इस विद्या की तरक्क़ी के लिये अमेरिका जाना होगा। वहां सब विद्या पढ़ाई जाती हैं। इंगलैंड में कृषी विद्या की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि वहां और २ हुनरों की अधिकता है, और आबादी बढ़ जाने के सबब से खेती भी कम है। हिन्दुस्तान में कृषी विद्या की पाठशाला पहले तो है ही नहीं, अगर कहीं है भी, तो ठीक नहीं है। यहां पढ़ाई का कुछ और ही ढंग है, किताबों में जो कुछ पढ़ाया जाता है वह अमल में नहीं लाया जाता। यहां पढ़ाना कुछ और, अमल में कुछ और। वहां स्कूल में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अच्छी तरह अमल में भी लाना सिखाया जाता है।

अमेरिका में सब प्रकार की पढ़ाई का एक विचित्र ढंग है। चाहे किसी कला कौशल की पाठशाला को देखिये, अमली कार्यवाही उनका मुख्य उद्देश्य होगा, और वीररस का सर्वदा समावेश रहेगा, यहां तक कि मज़हबी स्कूलों में भी वीरता भरी शिक्षा दी जाती है। "राम" का निमन्त्रण एक वार मज़हबी स्कूल में हुआ। जब "राम" वहां गया, तो पहले लड़कों ने "हुर्रा हुर्रा" के शब्दों से आदर किया। फिर "राम" का व्याख्यान आरंभ हुआ। जब व्याख्यान खतम हुआ, तो लड़कों ने परेट दिखाई जो बिलकुल जंगी क़वायद के समान थी। "राम" को शंका हुई और प्रिंसिपल से दर्य़ाफ्त किया, कि मज़हबी स्कूल में जंगी क़वायद का क्या काम है? उसने जवाब दिया, कि मौत का सामना तो सब से पहिले हम को ही करना पड़ता है। जब हम किसी मुल्क में उपदेश करने के लिये जाते हैं, तो हम लोगों पर ही सब से पहले मौत का क़हर बरसता है। हम लोगों की जान ही पहले बरबाद होती है। यदि इनके दिलों में वीरता न भरी जाय, तो वे लोग किस तरह दूसरे मुल्क में धर्मोप-देश करने के लिये जा सकते हैं। इसलिये इनके दिलों से मौत का खटका निकाल दिया जाता है, जिससे असभ्य (जंगली) मुल्कों में जाने के लिये ये लोग संकोच (पशोपेश) न करें, उनको बहादुरी के साथ धर्मोपदेश करें, यदि मारे जांय तो परवाह न करें। सच्चे धर्म के प्रचार करने में जान चली जाय, परवा नहीं, परन्तु धर्म का प्रचार सर्वत्र करना चाहिये। प्रिंसिपल साहिब के इस उत्तर से हमको कैसा अच्छा सबक़ मिलता है, "कि हम को धर्म प्रचार करने के लिये अपनी जान का ख़्याल नहीं रखना चाहिये।, और सर्वत्र धर्म का प्रचार करना चाहिये"। अफसोस जब दूसरे

मुल्क वाले धर्म के प्रचार करने में जान की बाज़ी लगा रहे हैं, तब हिन्दुस्तानी अपने भाई को भी धर्मोपदेश करने से जी चुराते हैं, तो क्यों न धर्म का ह्रास हो, क्यों न धर्म की हानि हो, क्यों न धर्म की ग्लानि हो ?

इस लिये हिन्दुस्तान धर्म-भ्रष्ट होने से मान-भ्रष्ट भी हुआ है। कैसे रंज की बात है, कि हिन्दुस्तान अपने उस सच्चे धर्म (वेदान्त) को भूल गया है, जो संसार की एकता को सिखाता है, जिस धर्म ने उसको उस ऊँचे आसन तक पहुँचा दिया था, कि जहां तक पहुँचने की बात सुन कर इस ज़माने के पंडित दाँतों तले उंगली दबाते हैं। वह भी समय था, कि हिन्दुस्तान में धर्म का ऐसा प्रभाव था, कि बिना धर्म विचार के हिन्दुस्तानी कोई काम नहीं करते थे। उनका खाना धर्म के लिये, सोना धर्म के लिये, पहरना धर्म के लिये, उठना बैठना धर्म के लिये, ब्याह-शादी धर्म के लिये होती थीं, अर्थात् बिना धर्म के हिन्दुस्तानी कोई काम नहीं करते थे। जिस काम का धर्म से वास्ता नहीं, उस काम से हिन्दुस्तानियों को भी वास्ता नहीं होता था। वे लोग धर्म के लिये जंगल २ फिरने, भूखे प्यासे मरने, पहाड़ों पहाड़ों में टकराने, गरमी सरदी को सहने और भारी २ कष्ट उठाने ही में आनन्द समझते थे। धर्म के सिवा वह स्वर्ग के सुख को नरक की सामग्री समझते थे। मछली के जीवन के साथ पानी का जैसा संबन्ध है, उन के जीवन के साथ भी धर्म का वैसा ही सम्बन्ध था, अर्थात् धर्म ही उन का जीवन वा धर्म ही उन का आधार था, धर्म ही उन का उद्देश्य था। वे धर्म वीर थे और भीरू थे। धर्म वीर इस लिये कि वे धर्म के लिये अपने शरीर को भी कुछ नहीं समझते

थे, और धर्म-भीरु इस लिये कि सर्वदा प्रत्येक काम के करने में डरते रहते थे कि कहीं धर्म की हानि न हो। अपने शरीर के साथ वह जैसा वर्ताव करते थे, दूसरे के शरीर के साथ भी उनका वैसाही वर्ताव होता था। वह अपने में और दूसरे में भेद नहीं समझते थे। उनकी नज़र में संसार के सब ही प्राणी बराबर थे। सब को ही धर्मात्मा होना, सब को ही धर्मोपदेश देना, वह चाहते थे। सब की ही भलाई करना उनका नित्य कर्म था। पर अब ज़माना (समय) पलट गया। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब केवल किताबों में रह गया है। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ़ विवाद में काम आता है, हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ बातूनी जमा-खर्च का रह गया।

हिन्दुस्तानी अब न धर्मवीर रहे, न धर्मभीरू, क्योंकि धर्म के लिये अपने शरीर की परवा न करना तो एक तरफ़ रहा, जो कोई उनके घर में आकर उनके धर्म की निन्दा करने लगे, तो भी कान नहीं हिलाते हैं; और यदि आप बड़े २ अनर्थ भी कर बैठें, तौ भी न डरें, कि कैसे हम धर्म-हीन हो रहे हैं, हम धर्म पर कैसे लात मार रहे हैं? प्यारे हिन्दुस्तानियों! हिन्दुस्तानी अपने बे नज़ीर शास्त्रों की ओर ध्यान नहीं देते, विचार नहीं करते, मनन नहीं करते। ओह! तुमको मालुम नहीं है, कि तुम्हारे पूर्वजों ने तुम्हारे लिये कैसे अक्षय खज़ाने का संग्रह रख छोड़ा है। ऐसे ख़ज़ाने के पास होने पर भी प्यारो! भूखे मत मरो, ठोकर मत खाओ, इधर उधर मत भटको। इस खज़ाने का उचित व्यवहार करो, उचित रीति से खर्च करो, देखो और विचारो कि इस दौलत पर सारी दुनियां का हक़ है। तुम केवल इस बात

के ऐजेन्ट हो, कि इस खज़ाने की बाबत सारी दुनियां को सूचित कर दो कि हमारे पास हम तुम सब के लिये ख़ज़ाना सौंपा गया है, आओ हम सब मिलकर उससे फायदा उठावें, और आप भी उस दौलत से फायदा उठाओ, और दुनियां को भी उठाने दो, किसी से भी उस खज़ाने को मत छिपाओ, नहीं तो विश्वास घात के दोष में पकड़े जाओगे। और खज़ाना भी तुम्हारे पास नहीं रहेगा, क्योंकि उस ख़ज़ानेकी यही तासीर है कि जो उसको छिपा रखता है, उसके पास से वह निकल जाता है। केवल संदूक रह जाता है, माल चला जाता है। शरीर रह जाता है, प्राण चला जाता है। सो तुम देख ही रहे हो कि तुम्हारे पास सिर्फ़ नक़ल बाकी रह गई है और असल का पता नहीं है। तुम्हारे धर्म की असलियत जापान अमेरिका आदि मुल्कों को चली गई है। तुम्हारे पास सिर्फ नकल बाक़ी है। तुम्हारा धर्म का वृक्ष खोखला होगया है। अब भी अगर बहुत जल्दी उसका उपचार नहीं करोगे, उपाय नहीं करोगे, विचार नहीं करोगे तो जो संदूक तुम्हारे पास है वह टूट फूट जायगा, शरीर भी सड़ गल जायगा, वृक्ष भी गिर जायगा, नकल भी उड़ जावेगी। और तुम मधु मक्खी की तरह हाथ मलते और सिर पटकते रह जाओगे।

इस खज़ाने को बहुत दिनों छिपाकर तुम सैंकड़ों तकलीफें सह चुके हो, हज़ारों नुक्सान उठा चुके हो, अपनी इज्ज़त और आबरू खो चुके हो, अपनी स्वतंत्रता और राजपाट खो चुके हो, अर्थात् अपना सब कुछ खोचुके हो, तो प्यारो ! अब तुम और क्या खोना चाहते हो, जो फिर भी इसके छिपाने की कोशिश करते हो ? क्या तुम यह चाहते

हो, कि तुम्हारा नाम निशान तक इस दुनियां में न रहे ? नाम के लिये तुम्हारा नाम किसी कदर अभी तक है, सो उसका मलिया मेट होना चाहता है, क्योंकि तुमने इस धर्म (खज़ाने) को इस क़दर छिपा रक्खा है, कि आप भी उस को नहीं देखना चाहते हो, कि उस में कैसे २ अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं जिससे तुम को, अपनी असलियत मालुम होती और तुमको अभिमान होता कि हमारा खज़ाना दुनियां के और खजानों से बढ़िया है। पर ऐसा न करके तुम दूसरों के काँच पर लुभाये चले जाते हो। और अगर तुम्हारी फिर भी यही हरकत रही, तो तुम सबके सब काँच पर लुभाये चले जाओगे और तुम्हारा नामो-निशान दुनियां में नहीं रहेगा। यह भी याद रक्खो कि यह अमूल्य खज़ाना अब छिपाने से भी छिपता नहीं है। लोगों को उसका पता लग चुका है और अमूल्य जवाहिरातों को वे लोग निकालने लग गये हैं। तुम्हारे खज़ाने के अमूल्य रत्नों में से, सत्य, शौच, संयम, विद्या, बुद्धि, धृति क्षमा नाम के रत्न और सब ही रत्नों से बना हुआ समदर्शिता रूप महारत्न, जिसका दूसरा नाम बृह्मविद्या या वेदान्त है, उस का नाम नहीं दिखाई देता है, वह सब के सब अमेरिका, जापान आदि दूसरे मुल्कों में चले गये हैं, ऐसा ही मालुम होता है। देखो अमेरिका, जापान आदि मुल्कों में जो अद्भुत प्रकाश का सौन्दर्य दिखलाई देता है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह उन्हीं महारत्नों की विमल ज्योति, छटा का प्राकृतिक गुण है, उन्हीं का प्रभाव है और उन्हीं का महत्व है। जापान, अमेरिका को देखकर कृष्ण के ज़माने का स्मरण होता है। उस ज़माने में हिन्दुस्तान में जिस दर्जे का धर्म था, उन मुल्कों में इस समय उस दर्जे का धर्म पाया जाता है, तब हिन्दुस्तान की

उस ज़माने में जो हालत थी, वह हालत जापान अमेरिका की इस वक्त हो, तो आश्चर्य क्या है।

एक दफे राम के लिये एक धनवान् स्त्री के यहां से न्योता आया, जो विपुल धन की अधिकारणी थी. जिसने ४५ लाख रुपया अपने मुल्क की उन्नति के लिये ही दान दिये थे। जब "राम" वहां गया, तो वह धनी स्त्री जूता झाड़ने के लिये तैयार थी। राम ने आश्चर्य से पूछा, कि तुम इतने नौकरों के मौजूद होने पर भी, ऐसा काम स्वयं क्यों करना चाहती हो? उसने उत्तर दिया, कि इस काम के करने में लज्जा ही क्या है, यह शारीरिक काम करने में हम अपनी इज़्ज़त समझते हैं, और उसने अपने ही हाथों से यह काम किया। क्या कोई हिन्दुस्तानी रईस, या मामूली आदमी भी ऐसा काम कर सकता था? कभी नहीं। हिन्दुस्तानी आदमी अगर यह सम्भव हो तो अपनी आँखों से भी देखा नहीं चाहता है। पर कृष्ण के ज़माने में ऐसा अतिथि-सत्कार बड़े आदमी स्वयं करते थे। कृष्ण तथा कृष्ण की पटरानियों ने स्वयं ऐसा आतिथ्य-सत्कार सुदामा आदि ब्राह्मणों और अतिथियों का किया। युधिष्ठर के यज्ञ में अर्जुन और कृष्ण ने झूंठी पत्तल उठाने और पैर धोने का काम अपने ज़िम्मे लिया था, पर अब अमेरिका में यह बातें पाई जाती हैं, हिन्दुस्तान में नहीं।

कृष्ण के ही ज़माने में हिन्दुस्तान में ब्रह्मचर्य्य की जो अवस्था थी वह अमेरिका में अब पाई जाती है। वहां २० वर्ष तक न कोई ब्याह करता है और न किसी को ब्याह का ख्याल ही होता है, यहां तक कि २० वर्ष तक तो लड़के और लड़कियां एक ही पाठशाला में पढ़ते हैं और भाई बहिन

की सी प्रीती रखते हैं। उनके विषय में चाहे कोई कुछ कहे, पर इस बात का हम को दृढ़ विश्वास है, कि उनके दिलों में कभी नापाक ख़्याल पैदा नहीं होता है। यह कैसे ग़ज़ब का ब्रह्मचर्य्य है? वह स्त्री और पुरुष को बराबर की शिक्षा देते हैं, उनकी पढ़ाई में वह कुछ भेद नहीं रखते हैं। मर्दों के बल को बढ़ाने की जैसी आवश्यकता है, स्त्री के बल को बढ़ाने की भी वैसी ही आवश्यकता समझते हैं, और है भी। वह लोग स्त्री के बल को कम नहीं करते, हम लोग बलहीन कर देते हैं। यही कारण है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियां बलहीन होती हैं, निर्बल संतान जनती हैं, और घर के कामों को भी यथा रीति सम्पादन नहीं कर सकती हैं। अमेरिका की स्त्रियां वीर होती हैं, वीर संतान जनती हैं, और घर के कामों में बड़ी प्रवीण होती हैं। वहां की स्त्रियों की वीर कहानी देख कर आश्चर्य्य होता है। जवान स्त्रियों की बात जुदी है, वहां लड़कियां ही सितम कर जाती हैं। एक दफे एक लड़की ने जिसकी आयु अठारह वर्ष की थी, एक झील को जिसका वर्ग (दायरा) तीन मील था, तैरने की इच्छा जाहिर की। इसके लिये दिन नियत कर दिया गया, नोटिस बांटे गये। लड़की की कठिन प्रातिज्ञा को सुन कर लोगों को आश्चर्य होता था। मुकर्रर दिन पर बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हुई। लड़की तैरने की तैयारी करने लगी। दो किश्तियों को उसके दोनों तरफ तय्यार रहने की इजाज़त हुई, ताकि लड़की थक जाय तो किश्ती में बैठाली जावे और डूबने न पावे। लड़की ने तैरना शुरू किया, किश्ती भी साथ २ चलती गईं, पर तअज्जुब है, कि लड़की उस बड़ी झील को साफ तैर गई और थकी नहीं! यहां मर्दों से भी यह काम होना संभव नहीं है, ऐसा कठिन काम सिवाय

ब्रह्मचर्य्य के हो नहीं सकता है। कृष्ण के ज़माने में स्त्रियां ब्रह्मचर्य्य में रहती थीं और बड़े २ कठिन काम संपादन करती थीं। सत्यभामा कृष्ण के साथ स्वयं लड़ाई में गई थीं। उस ज़माने में स्त्रियों को खूब शिक्षा दी जाती थी। रुक्मणी सत्यभामा आदि खूब लिखी पढ़ी हुई थीं। द्रोपदी ऐसी पंडिता थी, कि उसने सभा में जो प्रश्न किये थे उनका उत्तर देना भीष्म पितामह के लिये भी कठिन होगया था। अब हिन्दुस्तान में स्त्री-शिक्षा बंद कर दी गई, जिसका फल भी खूब मिल रहा है। अमेरिका आदि मुल्कों में स्त्री-शिक्षा का खूब प्रचार है। एक समय राम अमेरिका के जंगलों में रहता था, एक अमेरिकन लड़की अपने पिता के साथ उपदेश सुनने आई। उपदेश पूरा होने के पश्चात् उस लड़की ने जो कुछ सुना था, वह कविता में लिख डाला। इन सब बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि स्त्री और पुरुषों की शिक्षा में न पहिले भेद था और न इसलिये उनकी दिमागी ताक़त में फ़र्क़ होता था। तब हम कोई कारण नहीं समझते, कि स्त्रियों की शिक्षा क्यों बन्द हुई और उनकी ताक़त क्यों रोक दी गई है। मुल्क की उन्नति के लिये स्त्री-शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है, अर्थात् बिना स्त्री-शिक्षा के मुल्कों की उन्नति हो ही नहीं सकती है। लड़कपन में बालकों को जो उपदेश दिया जाता है, उसका असर बहुत जल्द होता है, और कभी ख़ाली नहीं जाता है, और बालकों को माता ही के साथ रहने का अवसर मिलता है। सो लड़कपन में बालकों को शिक्षित माता की आवश्यकता होती है। पर यदि स्त्री पढ़ाई ही नहीं जायगी, तो शिक्षित माताएं कहां से होंगी; और जब शिक्षित माता ही नहीं, तो बालकों को सदुपदेश ही कहां से दे सकती हैं। और जब बालक बाल्यावस्था ही में सदुपदेश

द्वारा सुयोग्य न बना दिये गये, तो मुल्क की कैसे उन्नति हो सकती है। अतः प्यारो! स्त्री-शिक्षा को फैलाओ, तुम्हारे पूर्व पुरुषों स्त्री-शिक्षा के पक्ष-पाती थे, तुम क्यों विपक्षी बन कर अपने पैर पर कुल्हाड़ा मारते हो? लड़कों को बाल्य-वस्था में यह ज़रूरी हैं, कि उनके नसनाड़ी में देशोन्नत्ति का ख्याल धसा दिया जाय, ताकि बड़े होने पर वह ख्याल दृढ़ हो जाय, और देशोन्नति करना ही उनका कर्तव्य मुख्य हो जाय। तब तुम्हारे देश में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी। तुम बराबर उन्नति करते जाओगे।

उन्नति के मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिये स्त्री-शिक्षा जैसी परम आवश्यक है, वैसे ही सत्य व्योपार है। बिना व्योपार की तरक्क़ी के देश की तरक्क़ी नहीं हो सकती। चाहे जिस उन्नत मुल्क की ओर दृष्टि डालो, व्यापार ही उसका मूल कारण दिखलाई देगा। हिन्दुस्तान में व्यापार बड़ी बुरी दशा में है। हिन्दुस्तानी व्यापार करना नहीं जानते। उद्योग और पुरुषार्थ को काम में न लाकर क्षुद्र व्याज के लोभ में हिन्दुस्तानी अपनी पूंजी लगा देते हैं, और आप सुस्त आलस्य-ग्रस्त होकर चारपाई पर पड़े २ मक्खी हांका करते है। दूसरे देश वाले अपने उद्योग, पुरुषार्थ और सत्य व्यापार से गरीब से धनी, और धनी से कुबेर हो रहे हैं, और हिन्दुस्तानी इसके ठीक विपरीत। दूसरे मुल्क वालों के व्यापार के फैलाव को देखकर मन को आश्चर्य होता है। शिकागो में मार्शल फील्ड की एक दुकान है। यह २० मंजिल ऊँची और एक मील लंबी चौड़ी है। यहां नित्य क्रोड़ों रुपयों का सौदा होता है। इतनी भारी और आला दर्जे की दूकान होने से इतना तअज्जुब नहीं होता, जितना

कि ग्राहकों के साथ इनका सद्व्यवहार देख कर होता है। लाखों रुपयों का माल खरीदने वाले से और एक पैसे की दियासलाइयाँ खरीदने वाले से एकसा बर्ताव करते हैं। चाहें कोई कितने ही का खरीदार हो, जब वह दुकान के फाटक पर जावेगा, तो शीघ्र ही एक दर्बान कुछ आगे बढ़ कर उसकी अगवानी करेगा, और बड़ी नम्रता से उस से विनय करेगा, कि क्या हुक्म है। जब वह कहेगा, कि मुझे फलानी चीज़ दरकार है, या मैं अमुक वस्तु केवल देखना चाहता हूं, तो वह दर्बान उसको उस कोठरी में, जहां उसके लायक़ सौदा है, या जहां २ वह देखना चाहता है, ले जायगा; पश्चात् फाटक से कुछ दूर तक उसको पहुंचा कर अदब से सलाम करके वापिस होगा। यह बराबरी का सलूक, यह सच्चाई, यह प्रेम ही व्यापार की उन्नति के मुख्य अंश हैं। वह इनका पूर्ण व्यवहार करते हैं, और इस लिये ही वह व्यापार में इतना बढ़े चढ़े हैं, कि उनकी बराबरी करनी मुश्किल जान पड़ती है। यहां हिन्दुस्तानियों की अजब कैफियत है। यहां ग्राहकों के साथ एकसा बर्ताव नहीं होता। बड़ी दुकानों से थोड़ा सौदा खरीदने का किसी को हौसला नहीं होता। इसका कारण यह है कि बड़ी दुकान वाले थोड़ा सौदा खरीदने वाले के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करते। छोटी छोटी दुकान वाले अक्सर झूठ कहा करते हैं। इन लोगों का यह ख्याल है कि बिना झूठ के व्यापार चल ही नहीं सकता। एक पैसे का सौदा खरीदने में घंटे भर तक मगज़ मारना पड़ता है। मुफ़्त में तकरार बढ़ती और समय नष्ट होता है। यदि सच्चाई के साथ व्यवहार किया जाय, तो क्यों न व्यापार में तरक्क़ी हो?

हिन्दुस्तान में व्यापार की तरक्क़ी क्यों नहीं होती? इस

का एक कारण यह है कि हिन्दुस्तानी लोग, जो लिख पढ़ सकते हैं वह केवल नौकरी किया करते हैं, व्यापार करना वह अपनी बेइज्ज़ती समझते हैं, या उधर ध्यान नहीं देते। चाहे दुकानदारों की ही वह नौकरी करें, पर दुकानदारी कभी नहीं करेंगे। यह क्या ही मज़े की बात है, कि जिस पेशे को स्वयं नहीं करना चाहते उस पेशे वाले की नौकरी तो वह कर लेगें, पर वह इज्ज़त का पेशा न करेंगे। हिन्दुस्तानियों को व्यापार की ओर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है। व्यापार नीति का रहस्य जानने के लिये सिर तोड़ परिश्रम तथा अनुभव करने की निहायत ज़रूरत है, कि किस प्रकार कौन से व्योपार से किस देश में कितना लाभ होगा, हमको ग्राहकों के साथ किस प्रकार वर्ताव करना चाहिये। इस बात की ओर पूरा २ ध्यान देना चाहिये, इस बात पर दृढ़ विश्वास करना चाहिये, कि सच्चाई के साथ व्योपार करने से जो लाभ होता है, वह कदापि झूठ व्यवहार से नहीं होता। झूठे व्यवहार से एक दफ़े रक़म आनी संभव है, पर पश्चात् वह चलता नहीं। काठ की हांडी दुसरी दफ़े आग पर नहीं रक्खी जाती, एक दफ़े चाहे उसमें बना भी लो। बरसाती नदी जैसे किनारों को तोड़ फोड़ कीचड़ तथा लकड़ी बहा कर सन सनाती हुई धूम धाम के साथ थोड़े दिनों तक अपना प्रवाह रखती है, और फिर उसमें पानी पीने को भी नहीं रहता, इसी प्रकार झूठा व्यवहार थोड़े दिनों तक दुनियां को ठग कर लोगों की नज़र में अपना वैभव दिखाता है, पश्चात् वह स्वयं नष्ट हो जाता है। और साथ ही इज्ज़त और आबरू को भी अपने में लयकर देता है। पर सत्य व्यापार करने से धन की प्राप्ती होती है, प्रतिष्ठा बढ़ती है, धर्म होता है और मुक्ति मिलती है। यह

लोक और परलोक दोनों बनते हैं। महात्मा तुलाधार वैश्य का इतिहास किस को मालुम नहीं? सत्य व्यापार करते २ यह इस दर्जे के धर्मात्मा और ज्ञानी हो गये थे, कि बड़े २ तपस्वियों को कितने ही वर्ष तपस्या करने पर भी वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। एक तपस्वी एक दफ़े महात्मा तुलाधार की धर्म व ज्ञान-कीर्ति सुनकर उनके सत्संग की इच्छा से उनके पास आया। ज्योंही उस महात्मा का तुलाधार से मिलना हुआ, कि तुलाधार ने उनके आने का कारण ज्यों का त्यों कह सुनाया। तपस्वी को बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि मुझे जो ज्ञान कितने ही वर्ष तपस्या करने पर भी प्राप्त नहीं हुआ, इस नीच-वृत्ति से इसे कैसे प्राप्त हुआ। दर्याफ्त करने पर महात्मा तुलाधार ने कहा "आप को आश्चर्य्य होगा, कि इस पेशे करने वाले को ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ! पर इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। मैं हमेशा सत्य का व्यवहार करता हूं। अपने ग्राहकों को ठगने की कभी इच्छा नहीं रहती। मामूली नफ़ा लेकर अपने ग्राहकों को सौदा देता हूं। मैं कभी कम या ज़्यादा किसी को नहीं देता और न किसी से लेता हूं। सब के साथ एकसां वर्ताव करता हूं, सब के साथ सच्चा व्यवहार करता हूं! सत्य ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है, और उसी का मैं सेवन करता हूं। छल कपट कभी नहीं करता। यही कारण है, कि मुझको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे आप जैसे महात्माओं का मुझे घर बैठे दर्शन मिलता रहता है"। अहा! सत्य का कैसा महात्म्य है! यदि हिन्दुस्तानी वैश्य लोग तुलाधार के इस पवित्र उपाख्यान की ओर दृष्टि दें, यदि वह तुलाधार की तरह सत्य व्यवहार करें, सत्य बोलें, सत्य तोलें, तो उनको तपस्या के लिये जंगल में जाने का क्या प्रयोजन है? सत्संग

के लिये महात्माओं के ढूंढ़ने का क्या मतलब है ? दुकान पर बैठे हुए धन, धर्म, काम, मोक्ष, सत्संग वग़ैरा सब अपने आप चले आते हैं, क्योंकि अक्सर यह देखा गया है, कि जो भले आदमी होते हैं, वह बहुधा उसी दुकान से लेन देन रखते हैं, जो सत्य व्यवहार करते हैं । भले आदमियों के ही समागम को सत्संग कहते हैं, सत्संग ही से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है । तो प्यारो ! तुम सत्य व्यवहार, प्रेम का वर्ताव क्यों न करो । यह देखिये, आज कल ग़ैर मुल्क वाले तुलाधार की तरह सत्य व्यवहार से कैसे माला माल हो रहे हैं । यह देखिये, उनका कैसा ऐश्वर्य्य बढ़ रहा है । यह देखिये, इसी व्योपार की बदौलत सारी दुनिया उनकी हस्तगत हुई चली जारही है । तुम लोग भी सत्य व्यापार करो । व्यापार की वृद्धि करो । क्षुद्र ब्याज के लोभ में पूंजी लगा कर आलसी मत बनो । देखो ग़ैर मुल्क वाले व्यापार में इतने रुपये लगा रहे हैं कि बुद्धि काम नहीं करती । उतना रुपया तुम्हारे पास है ही नहीं । मतलब यह है कि जितना भी रुपया तुम्हारे पास है, वह सब व्यापार के लिये बहुत कम है । ब्याज में न लगाकर उन रुपयों को व्यापार में लगाने से तुम को आशातीत लाभ होगा, तुम्हारे मुल्क को फ़ायदा पहुंचेगा ।

यह पहले कहा जा चुका है कि हिन्दुस्तानी लिखे पढ़े आदमी व्यापार करना नहीं चाहते, यह बड़े अफ़सोस की बात है, पर इससे भी ज़्यादा शोक इस बात पर है कि हिन्दुस्तानी व्यापारी लोग विद्या की ओर ध्यान नहीं देते । विद्या को वह कोई चीज़ नहीं समझते । उनका ख़्याल है कि हमको किसी की नौकरी थोड़ी करनी है, जो पढ़ने में इतना

सिर मारें। यह उन लोगों का बड़ा ही बेहूदा ख़्याल है। अनपढ़ आदमी जितना रुपया लगाकर जितना नफ़ा उठा सकेगा, लिखा पढ़ा आदमी उतने ही रुपयों से बीस गुना नफ़ा कर सकता है। व्यापार के लिये धन की जैसी ज़रूरत है, विद्या की भी वैसी ही ज़रूरत है। यह कैसी कठिन समस्या है, कि लिखे पढ़े आदमी तो व्यापार नहीं करते और व्यापारी लिखना पढ़ना नहीं चाहते। व्यापार के लिये नित्य नई नई तदबीरें सोचनी पड़ती हैं, और नई २ तदबीरों को सोचने के लिये विद्या चाहिये। पर व्यापारी लोग विद्या ही नहीं पढ़े हैं, तो वह कैसे नई २ तदबीरें सोच सकते हैं। यह कारण है कि हिन्दुस्तान का व्यापार तरक़्क़ी में नहीं है। ग़ैर मुल्क वाले नित्य नई २ तदबीरें सोच कर नया २ कौशल रचकर व्यापार में आशातीत उन्नति कर रहे हैं।

जब ग़ैर मुल्क वालों की इस उन्नति का सवाल हिन्दुस्तानियों के सामने रक्खा जाता है, तब हिन्दुस्तानी अक्सर यह दलील पेश करते हैं कि उनका मुल्क ठंडा है, और हमारा गर्म। गर्म मुल्क होने की वजह से हम उनका मुकाबला नहीं कर सकते। यह ख्याल बिलकुल ग़लत है। ठंड और गर्म उन्नति के साधक और बाधक नहीं हैं। यह विलायत वालों की एक पालिसी है, कि उन्होंने हिन्दुस्तानियों के दिलों में यह ख्याल जमा दिया है, ताकि हिन्दुस्तानी उनका मुकाबला करने की कोशिश न करें। आज कल हिन्दुस्तानी ऐसे सीधे मिज़ाज के होगये हैं कि विलायत वालों की चटक मटक पर बिलकुल मोहित हो गये। उनके दिलों में यह ख़्याल हो गया है कि विलायत वाले जैसे कहें व करें, वह ठीक है। "राम" इस बात को ज़ोर देकर कहता है, कि गर्मी के सबब

हिन्दुस्तान की उन्नति नहीं रुकी हुई है। हिन्दुस्तान की उन्नति अगर रुकी हुई है, तो इस लिये रुकी है, कि हिन्दुस्तानी लोग अपने सच्चे धर्म (वेदान्त अथवा सच्ची ब्रह्म विद्या) को अमल में लाना भूल गये हैं। तोता जैसे राम २ या और कोई वाक्य सिखाने से सीख जाता है, पर उसको समझ नहीं सकता, या अमल में नहीं लाता, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोग, ब्रह्म विद्या, यानी वेदान्त, शब्दों को तो जानते हैं, पर उसको अमल में नहीं ला सकते हैं, बस यही अवनति की निशानी हैं और इसी से अवनति होती है। अमेरिका जापान आदि मुल्कों में, यद्यपि, 'ब्रह्म विद्या' शब्द को नहीं जानते हैं, अर्थात् 'ब्रह्मविद्या' उनकी बुद्धि में नहीं है, परन्तु उनके नस २ में और उनके अमल में ब्रह्म विद्या है। यह कुदरत का क़ानून हैं, कि कोई भी चीज़ उस के गुण जानने पर भी जब तक अमल में नहीं लाई जाती है, अपना गुण नहीं दिखाती है। मिश्री का गुण चाहे कोई भलाही समझता हो, पर जब तक खायेगा नहीं, कभी अपना गुण नहीं दिखायगी, या अमृत के गुण चाहे कोई भला ही जानता हो कि इसके खाने से आदमी अमर हो जाता है, पर जब तक खावेगा नहीं अमर नहीं हो सकता, चाहे वह अमृत उसके हाथ में हो। सो इसी तरह हिन्दुस्तानी ब्रह्म-विद्या के गुणों को समझते हैं, उसकी तारीफ़ करते हैं, पर उसको अमल में लाते नहीं हैं, तब कैसे ब्रह्मविद्या उनको अपना गुण दिखावेगी? अमेरिका और जापान वालों ने ब्रह्म-विद्या का नाम नहीं सुना, तारीफ़ नहीं सुनी, पर वह उसको बेजाने ही अमल में लाते हैं, तब उन पर वह अपना गुण क्यों न दिखावे? और क्यों न उनकी उन्नति हो? अतः प्यारो! सर्दी और गर्मी उन्नति की साधक और बाधक नहीं हैं। अगर सर्दी उन्नति का कारण होती

तो तिब्बत आदि देशों की दशा भी अच्छी रहती। वह ब्रह्म विद्या है जिसका अमल में लाना और न लाना उन्नति का साधक तथा बाधक है। अमेरिका आदि मुल्कों के समान जब तुम भी शारीरिक परिश्रम के करने में अपनी प्रतिष्ठा समझने लगोगे, बीस पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करोगे, स्त्रियों को बराबर शिक्षित करोगे, सब के साथ बराबर का वर्ताव करोगे, सच्चाई से काम लोगे, एक दूसरे से मुहब्बत करना सीखोगे, तब ही तुम्हारी उन्नत्ति निश्चित है, और इसी को असली वेदान्त कहते हैं। भला विचार करने की बात है, कि जब हिन्दुस्तानी चक्रवर्ती राज्य करते थे, क्या तब हिन्दुस्तान गर्म नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने बड़े २ दर्शन-शास्त्र रचे थे, क्या तब हिन्दुस्तान गर्म नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने विमान आदि भाँति २ की कला निर्माण की थी, क्या तब हिन्दुस्तान गर्म नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने अपनी विद्या बुद्धि, वीरता से जग को जीत लिया था, क्या तब हिन्दुस्तान गर्म नहीं था? यदि कहो कि, जी! अब तो कलियुग आगया है, वह तो सतयुग की बातें हैं, तो क्या अमेरिका जापान के लिये कलियुग नहीं आया? यह दलील बड़ी पोच है। कलियुग कोई चीज़ नहीं है। कलियुग सिर्फ समय के एक हिस्से का नाम है। यह किसी का हाथ भले कर्म करने से नहीं खींचता है। हाँ बेशक, ब्रह्मविद्या के अमल में न लाने को कलियुग कहा जाय, तो ठीक है; और तब हक़ीक़त में मनुष्य से कुछ भी अच्छा काम नहीं हो सकता, क्योंकि कोई भी अच्छा काम ब्रह्मविद्या से भिन्न नहीं है। पर ऐसा कोई ज़माना ही नहीं, समय नहीं, घंटा पल नहीं कि जब ब्रह्मविद्या से परहेज़ किया जाय, तो कलियुग कहां रहा? प्यारो! विचार तो करो, कहां तुम्हारे पूर्व पुरुष अड़तालीस वर्ष तक

ब्रह्मचर्य्य रखते थे, और कहां तुम दो चार वर्ष के लड़के की शादी कर रहे हो। तुम विद्या को उपयोग में नहीं लाते, अर्थात् जो कुछ पढ़ते हो, वह अमल में नहीं लाते। रट २ कर बी० ए, एम० ए पास करते हो, पर उसका व्यवहार नहीं करते। खाली नौकरी कर लेने में अपने इल्म को सार्थक समझ लेते हो। तोता जैसे पढ़ाने से राम राम पढ़ लेता है, लेकिन समझता कुछ नहीं, यही हाल आजकल हिन्दुस्तानियों का है। सो हिन्दुस्तानियों का ब्रह्मचर्य्य न रखने से, बल-वीर्य्य और विद्या का उचित प्रयोग न करने से, बुद्धि कम-ज़ोर होती चली जा रही है। विलायत वाले कम से कम बीस वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य्य रखते हैं, इसलिये वे मज़बूत होते हैं, और जो कुछ पढ़ते हैं उसको अमल में लाते हैं, और जहां तक हो सकता है एक न एक बात नई पैदा करने की फिक्र में रहते हैं, इसलिये उनकी बुद्धि रोज़ बरोज़ बढ़ती चली जाती है। ठंड (सर्दी) होने की वजह से उनकी ऐसी उन्नति नहीं हुई। जिस ज़माने में हिन्दुस्तानी उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़े हुए थे, और विलायत वाले जंगल में रहा करते थे, उस ज़माने में भी वहां ठंड ही थी।

अतएव ठंड और गर्म की दलील बिलकुल बेहूदा है, यह कदापि उन्नति और अवनति के साधक व बाधक नहीं हैं। जापान पचास वर्ष पहले यदि गर्म था, तो वह ठंडा नहीं होगया। उसने ऐसी क्यों उन्नति की है? प्यारो! गुणों को ग्रहण करने और अवगुणों के त्यागने से, और अपनी विद्या-बुद्धि का उचित प्रयोग करने ही से जापान ने ऐसी तरक़्क़ी की है। तुम भी ऐसा कर सकते हो। जो पढ़ते हो, उसका अमल में लाना सीखो, यही उन्नति का उपाय है। हिन्दुस्तानी

बी. ए. एम. ए. पास करके जो बात नहीं सीख सकते, विलायत वाले उस बात को बचपन में सीख जाते हैं। वहां बच्चों के लिये किंडर-गार्डन नाम का स्कूल है। इस स्कूल में बच्चे ऐसे प्रेम से सिखाये जाते हैं कि लड़के घर में रहना पसंद नहीं करते। वह घर में अपने मां बापों का स्कूल में जल्दी भेजने के लिये नाक में दम कर देते हैं। वह हमेशा यह चाहते हैं कि हम स्कूल में जांय। इसका कारण यही है के उस्ताद लोग बच्चों के साथ ऐसी ऐसी मुहब्बत करते हैं कि उनके मां बाप भी वैसी नहीं करते। वह बच्चों के साथ बिलकुल बच्चे होजाते हैं। उनके साथ खेलते हैं, कूदते हैं, हँसते हैं, और साथ ही साथ उनको पढ़ाते जाते हैं। यहां रेल, जहाज़, तार और विविध भांति कलों के बनाने का सब सामान मौजूद रहता है। जब रेल का सबक़ पढ़ाया जाता है, तो उस्ताद लोग बच्चों को उस जगह लेजाते हैं, जहां रेल बनाने के कल पुर्ज़े रक्खे हुए रहते हैं। उस्ताद लोग इंजन बनाना सिखाते हैं, और लड़के बात की बात में हँसते खेलते इञ्जन बनाना सीख जाते हैं। जितनी देर में हिन्दुस्तानी बच्चे आर. ए. आइ. एल. रेल, माने धुवांगाड़ी, याद करते हैं, उतनी देर में वह रेल बनाना भी सीख जाते हैं। यहां सिर्फ नाम मात्र जानते हैं, वहां नाम के साथ रेल बनाना भी सीख जाते हैं। हिन्दुस्तानी शब्द-समूह को दिमाग़ में भरते हैं, विलायत वाले दिमाग से निकालते हैं, अर्थात् उनको अच्छी तरह समझते हैं। यहां रटन करते हैं, वहां मनन करते हैं। वहां अक़्ल से किसी बात को सोचते हैं, दिलमें उसको करने की इच्छा करते हैं, और हाथों से उसको करके दिखलाते हैं, यहां कुछ भी नहीं। खाली किताबें रट २ कर पंडित कहलाते हैं, यहां की विद्या पुस्तकों में है वहां, की विद्या

हर एक के हस्त-गत है। वहां कभी किसी विद्यार्थी को तब तक प्रमोशन (Promotion) नहीं मिलती, जब तक कि उसको उस दर्जे के लायक़, जिस में कि वह पढ़ता है, विचार करने तथा मनन करने की शक्ति नहीं होती। यहां इस बात पर विचार नहीं किया जाता। किताबें मुखाग्र करके अबोध बालक भी बड़ा दर्जा पास कर सकता है, कोई उसकी लियाक़त की ओर ध्यान नहीं देता। वहां सिर्फ लियाक़त देखते हैं। एक दफ़े एक लड़की ने मेरा लेकचर सुना। उसने उसको अपने तौर पर लिखा और अपने प्रिंसिपल को दिखाया। प्रिंसिपल बड़ा खुश हुआ, और उसने उस लड़की को छः महिने का प्रमोशन दिया। इसी प्रकार जब तक कि हिन्दुस्तान में भी लड़कों की लियाक़त तथा विचार शक्ति पर ध्यान नहीं दिया जावेगा, तब तक हिन्दुस्तानियों का आला दर्जा पास कर लेना भी किसी काम का नहीं। यहां भी किंडरगार्डन होने चाहियें, जिसमें बच्चे प्रैक्टिकल (व्यावहारिक) इल्म हासिल करें। उनकी विचार शक्ति बढ़े, अर्थात् युवा होने पर वह किसी काम के हों, और अपने मुल्क को फ़ायदा पहुँचा सकें। समय चला जा रहा हैं। एक एक लम्हा (पल) बहुमूल्य गुज़र रहा है। बहुत कुछ सो चुके, बहुत कुछ आराम ले चुके, बहुत कुछ समय नष्ट कर चुके, बहुत कुछ खो चुके। प्यारो ! अब अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दो। वह उपाय करो जिससे तुम्हारा मनुष्य जन्म सार्थक हो। असभ्यता का जामा उतार दो। थोड़ी देर के लिये इस बात पर विचार करो, कि तुम क्या थे और अब क्या होगये। अपने कर्तव्य की ओर ध्यान न देने से अब तुम धीरे २ रोटियों के भी मुहताज होते चले जारहे हो। यदि इसी प्रकार कुछ दिनों तक ऐसी गफ़लत की नींद में सोते हुए रहोगे, तो प्यारो ! तुम्हारी जैसी दशा होगी, वह

तुम स्वयं विचार लो। कहने से दुःख होता है। सावधान ! सावधान !! बहुत जल्द सावधान होना चाहिये।

अपनी उन्नति करने के लिये हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्क वालों से बहुत कुछ सीखना है। सब से पहली बात, जो उनसे सीखनी है, वह यह है, कि वह लोग बच्चों को किस प्रकार शिक्षा देते हैं। क्योंकि बच्चों की शिक्षा पर ही देश की उन्नति, अवनति का दारोमदार है। बच्चों को जिस प्रकार की शिक्षा दी जावेगी, उसी प्रकार का उनका आचरण, स्वभाव और ख्याल होगा। जापान में जब लड़का पहिले पहल स्कूल में भरती होता है, तो मास्टर उससे सवाल करता है "तुम्हारा शरीर काहे से जीवत है ?" लड़का कहता है "अन्न से"। मास्टर पूंछता है "कहां के अन्न से ?" लड़का जवाब देता है "जापान के अन्न से"। मास्टर फिर कहता है, तब यदि जापान में अन्न न होगा, तो तुम्हारा शरीर जीवत (जिन्दा) नहीं रह सकता ? लड़का जवाब देता है "नहीं, नहीं रह सकता"। तब मास्टर कहता है "जब तुम्हारा शरीर जापानी अन्न से बना है, तो क्या जापान को इख़्तियार है, कि जब उसको ज़रूरत हो, तब वह तुम्हारा शरीर ले ले ?" लड़का बहादुरी से जवाब देता है "हां, जापान को इख़्तियार है, जब चाहे हमारे शरीर को ले सकता है।" इस प्रकार अपने देश के लिये हर वख्त प्राण देनें को तय्यार रहने की जापानी बालकों को पहिले ही शिक्षा दी जाती है। यह उसी शिक्षा का फल है, कि जापान ने रूस जैसे प्रबल राज्य को ऐसी भारी शिकिस्त (हार) दी है। हिन्दुस्तानियों को भी अपने बालकों को पहिले ही से ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनका देशानुराग, इनकी देश-भक्ति, ऐसी

प्रबल होजाय कि समय पड़ने पर वे अपने देश के लिये प्राण देने को तय्यार रहें। शिक्षा का यही पहिला सबक़ पहिले पहल बालकों को देना चाहिये। पहिले देशवालों के साथ प्रेम तथा शान्ति-पूर्वक बर्ताव करना, यह उनकी दूसरी शिक्षा होनी चाहिये। स्कूलों ही में ऐसी शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिये। यदि स्कूलों में लड़के आपस में लड़ना नहीं सीखेंगे और प्रेम से रहेंगे, तो जवान होने पर वह यकायक अपने देश वालों से नहीं लड़ेंगे, और प्रेम पूर्वक बर्ताव करेंगे। अमेरिका में इस प्रकार की शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। अमेरिका में एक दफे एक स्कूल के लड़कों में आपस में लड़ाई हुई। बहुत कुछ मार-पीट हुई। उसी वक्त प्रिंसिपल को खबर दी गई। प्रिंसिपल आये। उन्होंने न किसी लड़के का इज़हार (बयान) लिया और न किसी को धमकाया। उन्होंने आते ही बाजे बजवाने शुरू किये, शांति के गीत गवाये। पश्चात् लड़कों को बुलाया, और झगड़े का कारण पूंछा और यह भी दर्य्याफ़्त किया, कि किसकी शरारत से यह झगड़ा पैदा हुआ। लेकिन आश्चर्य (ताअज्जुब) है, जिन लड़कों में थोड़ी देर पहिले लठ चले थे, उनकी ज़बानसे अब किसी की भी शिकायत नहीं निकली। इसका कारण क्या था? प्यारों! इस का कारण वह बाजा और शान्ति के गीत थे। उनको जो पहिले क्रोध हुआ था, वह बाजा और गीत सुनकर शान्त होगया। यदि प्रिन्सिपल आते ही उनके इज़हार लेने शुरू करते, तो इस लड़ाई का नतीजा शांति में खतम न होता। एक लड़का दूसरे को क़सूरवार ठहराता, और अवश्य ही कुछ लड़के कसूरवार निकलते। और संभव है कि इसका नतीजा होता, कि कुछ लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते। और जो लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते, वह

उन लड़कों के हमेशा जानी, दुशमन (घोर शत्रु) होजाते, उनके विरुद्ध गवाही देते। ख्याल करने से इसका नतीजा बहुत बुरा पैदा हो सकता है। यहां तक कि देश मे अशांति फैल सकती है।

तीसरी बात लड़कों को डराना धमकाना नहीं चाहिये लड़कों को डराना और धमकाना बड़ी बुरी बात है। इससे लड़के डरपोक और कमज़ोर होजाते हैं। हिन्दुस्तान में डराना धमकाना बुरे लड़कों को नेक बनाने की चेष्टा है, परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है। लड़कों को नेक बनाने के लिये सब से उम्दा मार्ग यह है, कि उनकी नज़रों से कोई बुरी बात नहीं गुज़रने देनी चाहिये। और वीर तथा पुष्ट बनाने के लिये उनको पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिये। जापान में बालकों को ऐसी स्वतंत्रता है, कि वैसी स्वतंत्रता कहीं नहीं देखी गई। वहां बालकों को कहीं खेलने के लिये मुकर्रिर जगह नहीं है। जहां उनकी खुशी होती है, वहां वह बेरोक टोक खेलते हैं। चाहे वह आम जगह हो, या ख़ास; बाज़ार हो, या गली, जहां उनकी मर्ज़ी हो, वहां उनको कोई नहीं रोक सकता है, यहां तक कि यदि वह बाज़ार में खेलते हों और कारण वशात वहां के बादशाह की गाड़ी उधर हो के निकलने वाली हो, तो मजाल नहीं है कि कोई उनसे कहदे, कि "खेल बन्द करो, बादशाह आते हैं"। जब तक वे स्वयं अपना खेल बंद नहीं करते, तब तक मिकाड़ो भी अपनी गाड़ी खड़ी रखेंगे। यह कारण है कि जापानियों के दिलों में भय का नाम निशान भी नहीं हैं।

चौथी बात यह है कि बालकों को जो कुछ पढ़ाया जाय, वह अमल में भी लाना सिखलाया जाय। हिन्दुस्तान में इस बात

की बड़ी कमी है। हिन्दुस्तानी स्कूलों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अमल में लाना नहीं सिखाया जाता है। इस लिये हिन्दुस्तानी बालक युवा होने पर बातूनी जमा खर्च तो बहुत कर देते हैं, पर अमली कार्यवाही कुछ नहीं कर सकते।

पाँचवी बात यह है, कि जिस विषय की ओर बालक प्रवृत हो, वही विषय उसको विशेष रूप से पढ़ाया जाय, क्योंकि ऐसा करने से वह अधिक उन्नति कर सकेगा। हिन्दुस्तान में इस मुख्य प्रयोजनीय बात की ओर कोई ध्यान नहीं देता। यदि किसी बालक को वकालत प्रिय है, तो उस के माँ बाप उसको इञ्जनीयरिंग पढ़ने का अनुरोध करेंगे; यदि गणित शास्त्र की ओर उसकी रुचि है, तो उसको इतिहास पढ़ने के लिये कहेंगे; यदि उसकी चित्त-वृत्ति साइंस की ओर है, तो उसे साहित्य पढ़ावेंगे; और यदि उसको संगीत प्रिय है, तो युद्ध-विद्या सिखावेंगे। अब यह विचार करने की बात है, कि जिस विषय की ओर बालक की रुचि ही नहीं है, उस विषय में वह क्यों कर तरक्क़ी कर सकता है। सुतरां बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। बालकों पर ही देश की भावी भलाई का भरोसा है।

एक बात जो केवल हिन्दुस्तानियों में दूसरे देशों से बढ़ कर अभी तक पाई जाती है, वह योग-विद्या है। पर अब अमेरिका आदि देश इस में खूब उन्नती कर रहे हैं, और हिन्दुस्तानी भूल रहे हैं। अमेरिका में एफ ऐमरसन साहब ने जो जंगलों में रहता था योग-विद्या में इतनी उन्नति की है, कि आश्चर्य्य होता है। वह मोहन को बदल कर गोपाल कर सकता है, स्थल को जल; यह सब करामातें वह सब योग-विद्या से करता है, जादू से नहीं। और अब

आशा है कि वह लोग योग-विद्या में भी हिन्दुस्तानियों से बढ़ जायगे। सो प्यारे ! हिन्दुस्तानियों !! तुमको संभलना चाहिये। पहिले पहल विद्या रूपी सूर्य्य का प्रकाश यहीं हुआ था। यहां से अब अरब, मिश्र, रूम, यूनान, होता हुआ इंगलैंड पहुँचा था। वहां से अमेरिका को होता हुआ अब जापान पहुंच गया! अब जापान से उसकी किरणें इधर झुकती हुई दिखलाई देती हैं। अब तुम सचेत हो जाओ। ऐसा न हो यह सूर्य्य पश्चिम को ढलक जाय और तुम सोये के सोये ही रह जाओ। उठो और उठाने का प्रयत्न करो। सब अपने अपने कर्तव्यों पर लगो, और अपने देश-वासियों को कर्तव्य बतलाओ। सूर्य्योदय पूर्व ही अपने दशोन्नति रूपी कर्तव्यों को स्थिर करलो। एक क्षण, एक पल भी व्यर्थ न खोओ। यदि सोच विचार में ही पड़े रहोगे, तो सूर्य्य पश्चिम को चला जायगा, फिर तुमसे कुछ करते धरते नहीं बनेगा।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आप अपने घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं।

२० दिसम्बर १९२२ को एकेडेमी आफ साइंसेज में दिया हुआ व्यख्यान।

महिलाओं तथा भद्र पुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन्।

आज हमारे पास लोगों के बहुत से प्रश्न पत्र हैं। जब एक वकील किसी अदालत को आता है, तब शायद वह इतने ही काग़ज़ात अपने साथ लाता है, किन्तु वे सब नहीं सुने जाते। इन प्रश्नों की विपुल संख्या ही इन सब को न सुनाये जाने, और इनका उत्तर न देने का अवसर देती है। एक दूसरा कारण है जिससे हम इनमें से बहुत से काग़ज़ात को हाथ में न लेंगे। इन में से अधिकांश का सम्बन्ध प्रेत-लोक या परलोक से है। अभी तुम इस लोक में हो, और जिस विषय से वर्तमान में तुम्हारा कोई सरोकार नहीं है, उस पर कुछ कहने की अपेक्षा से यह बेहतर होगा कि तुम्हारे हृदय और व्यवसाय से अधिक सम्पर्क रखनेवाले विषय की कुछ चर्चा की जाय।

पिछली वार जो विषय उठाया गया था, उसी को हम जारी रखेंगे। वह विषय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। "आत्मानुभव प्राप्त करने की आकांक्षा करना, क्या किसी विवाहित मनुष्य के लिये युक्ति सङ्गत होगा"? यह विषय है। यह विषय लम्बा है और आजकी वक्तृता में ही इसकी पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती। फिर भी, आओ, देखें कि आज इसके बारे में हम क्या जान सकते हैं।

भारत में एक बड़ा ही निर्दयी और हास जनक (रंगी) मालिक था। वह अपने नौकरों को बड़े ही मज़ेदार ढंग से घोर पीड़ा दिया करता था। एक बार नौकर ने एक अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन (खाने की चीज़) मालिक के लिये तैयार किया। मालिक चाहता था कि नौकर उसे न खाय। वह चीज़ रात को पकाई गयी थी। मालिक ने कहा, "हम इसे अभी न खाँयगे, सवेरे खालेंगे। इस समय लेटो जाकर, सवेरे हम लोग इसे चक्खेंगे"। मालिक का असल इरादा इसे सबेरे खाने का इस लिये था कि उस समय तक उसे खूब भूख लग जावेगी। रात को कुछ भी न खाने के कारण वह सबेरे चाट पोछ कर खाजायगा, और नौकर के लिये कुछ भी न वचेगा। यह मालिक का असली इरादा था। वह चाहता था कि नौकर छिलके और टुकड़े खाय, परन्तु इस अभिप्राय को नौकर से साफ नहीं कह सकता था। उसने नौकर से कहा, "जाओ, आराम करो, और सवेरे हम में से वह मनुष्य इसे खायगा जो बड़े ही सुन्दर और सुखकर स्वप्न देखेगा। यदि सवेर तक अत्युत्तम स्वप्न तू देख लेगा, तो सारा हिस्सा तेरा होगा, अन्यथा सब मैं लूँगा और खाऊँगा, और तुम्हें अपने को छिलकें और टुकड़ों से संतुष्ट करना पड़ेगा"। सबेरा हुआ और मालिक तथा नौकर एक दूसरे के सामने बैठे। मालिक ने नौकर से कहा कि अपने स्वप्न को बयान करो। नौकर ने कहा, "जनाब आप मालिक हैं, आगे आप को चलना चाहिये। आप अपने स्वप्नों को पहले बतावें, बाद को मैं अपने बयान करूँगा"। मालिक ने अपने मन में सोचा कि, यह गरीब नौकर, यह जाहिल, अपढ़ मनुष्य अति मनोहर स्वप्न नहीं गढ़ सकता। वह कहने लगा, "मैं अपने स्वप्न में हिन्दुस्तान का महाराजा

हुआ। मैं ने अपने स्वप्न में देखा कि यूरोप और अमेरिका की सब शक्तियां भारत के राजा के अधीन आगईं, और भारत के सम्राट की हैसियत से मैं सारे संसार पर हुकूमत करने लगा"। आप जानते हैं कि यह स्वप्न निष्ठुर मालिक का था। सच्चे भारत निवासी, बादशाह कहलाने वाले मांस के लोथड़ों को अपने सामने रखकर उनकी उपासना करने की बच्चेपन की रीति को जारी नहीं रखना चाहते। अच्छा, यह उस मनुष्य का स्वप्न था। उसने अपने को भारत के सिंहासन पर बैठा और सारे संसार पर हुकूमत करता हुआ समझा, और वहाँ उसे सारे संसार के सब सम्राट अपने सामने खड़े और वंदना करते मिले। इसके सिवाय, उसने देखा कि सब देवता और साधु-महात्मा उसके दरबार में लाये गये, और उसके दहने या बांये [राम भूल गया कि दहने या बांये] पर बैठे हैं। अपना स्वप्न सुना चुकने के बाद उसने नौकर से अपनी कहानी, अपना स्वप्न, सुनाने को कहा।

विचारा नौकर, सिर से पांव तक काँपता हुआ बोला, "हुज़ूर, हुज़ूर, मैं ने इस तरह का कोई स्वप्न नहीं देखा"। मालिक फूल उठा और बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि सब स्वादिष्ट भोजन अब मेरे ही पल्ले पड़ेगा। नौकर कहने लगा कि "स्वप्न में मुझे एक विराट दानव दिखाई पड़ा, बड़ा विकराल, महा भयङ्कर दैत्य मुझे अपनी ओर आता दिखाई पड़ा। उसके हाथ में एक लपलपाती तलवार थी"। मालिक पूछने लगा, "फिर क्या हुआ, फिर क्या हुआ"? तब उसने कहा, "सरकार! वह मेरे पीछे दौड़ा, वह मुझे मार डालने ही को था"। मालिक मुसकराया कि यह तो अच्छा लक्षण

है। "वह मुझे मारने लगा, वह मेरा बध करने की चेष्टा कर रहा था"। "और तुमने क्या किया? तुम्हें क़त्ल करने में उसका क्या अभिप्राय था"? नौकर ने कहा, "उसने मुझ से वह स्वादिष्ट भोजन खा जाने को या मर जाने को कहा"। "और तब तुम ने क्या किया"? उस ने कहा, "मैं चुपके से रसोई घर में चला गया और हरेक पदार्थ खा गया"। मालिक ने कहा, "तुमने मुझे क्यों नहीं जगाया"? नौकर ने जवाब दिया, "जनाब, आप तो सारी दुनिया के बादशाह थे। आप के दरबार में बड़े लोगों का, बहुत ही शानदार जमाव था, और लोग तलवारें निकाले तथा तोपें बन्दूकें लिये हुए थे। यदि मैं आप महाराजाधिराज के पास पहुँचने का यत्न करता, तो वे मुझे मार डालते। मैं आपके पास पहुँच कर न बता सका कि मैं किस संकट में था। इस लिये वह स्वादिष्ट भोजन खा जाने को मैं लाचार हुआ, मुझे अकेले ही उसे चखना पड़ा"।

राम कहता है कि तुम वचन-दत्त स्वर्ग (promised paradise), वचन-दत्त वैकुण्ठ व प्रतिज्ञात परलोकों का स्वप्न देख रहे हो। तुम इन्हीं चीज़ों का स्वप्न देख रहे हो, और ये रोचक स्वप्न हैं, ये मधुर स्वप्न हैं, और इन स्वप्नों में तुम आकाश में महल बना रहे हो, शायद बालु पर ही बना रहे हो। तुम आकाश में महल बना रहे हो, और सोच रहे हो कि "हमें यह करना चाहिए और वह करना चाहिए। हमें शैतान से डरना चाहिए और हमें ईश्वर से डरना चाहिए। हमें इस तरह बर्ताव करना चाहिए, अथवा अमुक अमुक देवदूत हमें नरक से स्वर्ग न जाने देगा"। तुम इन चीज़ों का स्वप्न देख रहे हो, किन्तु राम कहता है कि वह नौकर होना बेहतर

है जिसने दैत्य के डर से उपस्थित स्वादिष्ट भोजन खालिया था। वैसा करना अच्छा है। वह एक ऐसी बात थी जिसका सम्बन्ध वर्तमान से था। वह एक ऐसी बात थी जो उस समय सत्त्य थी। जो मामले तुम्हारे हृदय से निकट हैं, जिनका सम्पर्क तुम्हारे व्यापार और चित्त से है, पहले उन पर ध्यान देना अधिक वाञ्छनीय है, और परलोक, स्वप्नों का वह लोक, अपनी फ़िक्र आप कर लेगा। उदारता का आरम्भ घर से होता है। पहले घर से आरम्भ करो।

राम अब उस प्रश्न पर आता है जिसका वास्ता तुम सब से है। वह प्रश्न यह है, "विवाहित जोड़ा किस तरह रहे कि उनके विवाह का परिणाम संकट, चिन्ता, पीड़ा और रंज न हो"? वे कहते हैं, "ऐ ईश्वर! तू हमारी तकलीफ़ों को दूर कर दे। हे ईसा! तू मेरे क्लेशों को हटा दे। हे कृष्ण और बुद्ध! मेरे दुःखों को हर ले"। किन्तु राम कहता है कि मृत्यु के बाद वे तुम्हारी तकलीफ़ों को दूर करें या न करें, पर इस जीवन में तुम्हारे कष्टों को कौन हरे? इस जीवन में पति को स्त्री का ईसामसीह होना चाहिए, और स्त्री को अपने पति का ईसामसीह। पर हालत यह है कि हरेक स्त्री अपने पति के लिए और हरेक पति अपनी स्त्री के लिये जुडास *इसकैरियट (Judas Iscariot) हो रहा है। मामला कैसे सुधरे, बात ठीक हालत में क्यों कर आवे? प्रत्येक पति और प्रत्येक स्त्री को संन्यास का आलिङ्गन करना होगा। आप जानते हैं कि हज़रत ईसा, इसाई संसार के अनुसार, त्याग या संन्यास की मूर्ति था। इसी तरह हरेक स्त्री यदि

* हजरत ईसा के उस शिष्य का नाम है जिसने ईसा को समय पर धोखा दिया था। इसलिये धोकेबाज वा दग़ाबाज से अभिप्राय है।

त्याग की मूर्ति हो जाय, तो वह अपने पति की त्राता हो सकती है। संन्यास एक ऐसा शब्द है जिससे हरेक काँपता और थर्राता है। हरेक इस शब्द से थर्राता है, किन्तु विना त्याग के तुम्हारे परिवार में कोई स्वर्ग लाने की ज़रा सी भी सम्भावना नहीं है। त्याग शब्द के सम्बन्ध में वड़ी भ्रान्ति है। पिछले व्याख्यानों में यह शब्द इतनी वार वर्ता गया है कि इसके असली अर्थ समझा देना अव बहुत ज़रूरी है। त्याग यह नहीं चाहता कि तुम हिमालय के घने जंगलों में चले जाओ; संन्यास यह नहीं चाहता कि आप सब कपड़े खोल कर नंगे हो जाओ; संन्यास तुम से नंगे सिर और नंगे पैर चलने को नहीं कहता। यह त्याग नहीं है। यदि त्याग का यही अर्थ होता तो विवाहित जोड़े के लिये त्याग का अभ्यास कैसे संभव हो सकता था? वे दोनों स्त्री और पति की तरह रहते हैं, उनके परिवार है, उनके सम्पत्ति है। वे लोग त्यागी कैसे हो सकते हैं? हिन्दू धर्मग्रन्थों में त्याग का जो चित्र खींचा गया है वह है एक साथ बैठे हुए भगवान् शिव और भगवती पार्वती का, और उनका परिवार उनके आसपास है। भगवान् शिव और उनकी स्त्री पार्वती, एक साथ स्त्री-पुरुष की तरह रहते हैं, अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में वे त्याग की मूर्ति कहे गये हैं। लोग समझते हैं कि त्याग शब्द से हिन्दुओं का अभिप्राय है वन को चले जाना, समाज से अलग रहना, हरेक वस्तु से दूर भागना, हरेक चीज़ से नफरत करना। पर हिन्दुओं के अनुसार त्याग शब्द के ये अर्थ नहीं हैं। अपने गार्हस्थ्य जीवन में भी हिन्दुओं को "संन्यास" का चित्र खींचना पड़ता है। यदि यह वेदान्त, यदि यह तत्त्वज्ञान या सत्य केवल वन को चले जाने वाले थोड़े से लोगों के लिये

होता, तो यह किस काम का है ? हमें इसकी ज़रूरत नहीं। इसे गंगा नदी में फेंक दो, हमें यह न चाहिए। यह त्याग, जिसका हिन्दू प्रचार करते हैं, सब के काम का है। जिस तरह के त्याग की हिन्दू शिक्षा देते हैं, वह सफलता की एक मात्र कुंजी है। कोई वीर अपने को विख्यात नहीं कर सकता, यदि वह त्यागी पुरुष नहीं है। कोई भी कवि आप को कोई कविता नहीं दे सकता, यदि वह त्यागी पुरुष नहीं है। आप बाइरन (Byron) का नाम लेंगे, जो इंग्लैंड से निकाल बाहर किया गया था, क्योंकि वह बड़ा ही दुराचारी समझा जाता था। वेदान्त कहता है कि बाइरन की भी मेधा-शक्ति (genius) का कारण संन्यास ही था। संन्यास की जो कल्पना राम तुम्हारे सामने रक्खेगा, वह अति विलक्षण है। वाशिंगटन त्यागी पुरुष है। यदि उस में त्याग न होता तो सभा में वह विजयी न होता। यह बड़ी ही अद्भुत बात है। क्या तुम यह नहीं समझते कि हरेक नायक को, चाहे वह नेपोलियन बोनापार्ट हो चाहे वाशिंटन वा वेलिंगटन हो, चाहे एलिकज़ैंडर वा सीज़र हो, चाहे कोई भी हो, विजयी होने के लिये, राष्ट्रों का स्वामी बनने के लिए, सेनाओं का सञ्चालन करने की शक्ति पाने के लिए, अपने को व्यवहारतः सब संसार से, सब संबन्धों से परे रखना पड़ता है। उसका चित्त संक्षोभ-हीन, शान्त, सौम्य, उद्वेग रहित और अचंचल अवश्य होना चाहिए, और एक ही विन्दु पर उसे अपनी सब शक्तियां लगा देनी चाहिये। दूसरी हालतों से उसे क्षुब्ध न होना चाहिए। और इसका क्या मतलब है ? इसका अर्थ मानो सब पदार्थों का त्याग कहा जा सकता है। इस त्याग की मात्रा जितनी ही अधिक किसी मनुष्य में होती है, उतना ही वह श्रेष्ठ है। नेपोलियन समर-भूमि में आता है, और केवल एक शब्द "ठहरो" से

उन हज़ारों आदमियों को रोक लेता है जो उसे परास्त करने आये थे। यह कैसे? यह शक्ति कहां से आई? सच्चे असली तत्त्व में, भीतर के परमात्मदेव में, अन्तरात्मा में नेपोलियन के लीन होजाने से यह शक्ति मिली। यह शक्ति वहां से आती है। उसे चाहे इसकी खबर हो या न हो। वह शरीर से, चित्त से, हरेक वस्तु से परे खड़ा हुआ है; संसार उसके लिए संसार ही नहीं है। इसी प्रकार, सर आईज़क निउटन जैसे श्रेष्ठतम मेधावी (genius) को भी, अपने तत्त्वज्ञान और विज्ञान से दुनिया का वैभव बढ़ाने के लिए, प्रत्यक्ष इस त्याग का अनुभव करना पड़ा है। वह देह, चित्त और हरेक चीज़ से ऊपर उठ जाता है। वह घर में बैठा हुआ है, किन्तु घर उसके लिए घर नहीं है, मित्र उसके लिए मित्र नहीं हैं। कैसी समाधि की अवस्था है! लोग कहते हैं कि वह कुछ नहीं कर रहा है। लेकिन जब तुम कहते हो कि वह कुछ नहीं कर रहा है, तभी वह अपनी सर्वोत्तम अवस्था में है। ज़ाहिरा वह निस्तब्ध है, उसने हरेक वस्तु त्याग दी है, किन्तु वह अपनी परमोच्च दशा में है। ये लोग, ये वीर, ये नायक, ये अलौकिक-बुद्धि महापुरुष अज्ञाततः त्याग पर पहुँच जाते हैं। जिस सत्य को वे अनजाने अमल में लाते हैं, और जिसके द्वारा वे उन्नत होते और अपने को विख्यात करते हैं, उसी को आपके सामने विधिवत रखना हिन्दू तत्त्वज्ञान का उद्देश्य है। उस (सत्य) तक ठीक रास्ते से आपको पहुँचाना, उसे एक विज्ञानका रूप देना और उन क़ानून, नियम तथा तरीक़ों को जो उस तक आप को लेजाते हैं, आपको समझाना इस हिन्दू तत्त्वज्ञान का उद्देश्य है।

यह त्याग हिन्दुओं में ज्ञान कहा गया है, जिसका अर्थ विद्या है, अर्थात् त्याग और ज्ञान एक ही और

अभिन्न वस्तु हैं। त्याग शब्द ज्ञानका पर्यायवाची है, किन्तु यह प्रचलित ज्ञान नहीं, भौतिक पदार्थों का ज्ञान नहीं; हाँ, ठीक, इस (भौतिक ज्ञान) से भी आपको बड़ी सहायता मिलती है, किन्तु यह असली ज्ञान नहीं है, यह अकेला आपको कदापि कोई शान्ति नहीं देसकता। जो ज्ञान त्याग का पर्यायवाची है वह सत्य का ज्ञान है, असली आत्मा का ज्ञान है; आप जो वास्तव में हैं, उसका ज्ञान है। अच्छा, आप जो कुछ हैं, उसका ज्ञान आपको बुद्धि द्वारा मिल सकता है। क्या वह यथेष्ट होगा? किसी हद तक, किन्तु पूरी तरह नहीं। इसलिये कि आप ज्ञानी हो सकें, आप जीवन्मुक्त हो सकें, यह विशाल संसार आप के लिये स्वर्ग हो जाय, आपको इस दिव्य ज्ञानका अनुभव करना होगा—इस ज्ञान का कि "आप परमात्मा हैं, आप दैवी-विधान हैं, आप विदेह, परम शक्ति या तेज हैं, अथवा जो कोई भी नाम देना पसन्द करें, वह वस्तु आप हैं, या यह ज्ञान कि आप परमेश्वर हैं।" यह ज्ञान केवल बुद्धि द्वारा प्राप्त हुआ २ नहीं, बल्कि भाव की भाषा में भावित, आप के आचरण में आचरित, आप के रक्त में रंजित आपकी नसों मे दौड़ता हुआ, आप की नाड़ी के साथ फड़कता हुआ, आप में भिद कर और व्याप्त होकर आपको जीवन्मुक्त बना सकता है। यह ज्ञान त्याग है। यह ज्ञान प्राप्त करो, और आप त्यागी पुरुष हैं।

वन को चला जाना तो उद्देश्य प्राप्ति का एक साधन मात्र है, विश्वविद्यालय को जाने के समान है। महाविद्यालय में हम विद्योपार्जन करते है, परन्तु यह कभी नहीं समझा जाता कि हमें वहां सदा सर्वदा रहना है। इसी तरह यह ज्ञान पाने के लिए आप कुछ काल के लिए भले ही जंगल को चले जाँय, किन्तु वेदान्त-दर्शन यह कभी नहीं सिखाता कि

बनवास का नाम त्याग है। त्याग का तुम्हारे स्थान, स्थिति, या शारीरिक कार्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। उसे इन बातों से कोई मतलब नहीं। त्याग तो आप को केवल आपकी परमोच्च दशा प्राप्त कराता है, आपको आपके श्रेष्ठपद पर ला बिठाता है। त्याग केवल आप की शक्तियां बढ़ाता है, आपके तेज की वृद्धि कराता है, आपका बल पुष्टतर करता है, और आपको ईश्वर बना देता है। वह आप का सब रंज हर लेता है, वह आपकी सम्पूर्ण चिन्ता और भय भगा देता है। आप निर्भय और सुखी होजाते हैं।

एक विवाहित पुरुष इस त्याग को कैसे पा सकता है? यदि स्त्री और पुरुष एक दूसरे को सुखी करने की ठान लें, तो आज ही मामला निपट सकता है। सब इंजीलें तब तक कुछ भी भला नहीं कर सकतीं, जबतक कि स्त्रियां और पति एक दूसरे के रक्षक और ईसामसीह होना न ठान लें। देखिये, जब लोग धार्मिक व्याख्यानों में आते हैं, तब उनसे हरेक चीज़ त्यागने को कहा जाता है, अपने शरीर और सम्पत्ति को ईश्वर का समझने के लिये कहा जाता है, और अपने को यह देह न मान कर ईश्वर मानने को कहा जाता है। उन्हें ऐसा उपदेश किया जाता है। उन्हें कुछ ज्ञान मिलता है। किन्तु जब वे घर लौटते हैं, तब क्या होता है? स्त्री आकर कहती है, "हे भगवन्! मुझे एक बड़ा गौन (gown, साया) चाहिए", और वह कहता है कि मेरे पास पैसा नहीं है। इसका क्या अर्थ है? बच्चा आता है और कहता है, "दादा! प्यारे दादा!! भीतर आओ"। ओ मेरा पुत्र! मेरी स्त्री!! मेरी लड़की! मेरी बहन!! ऐसा कहने लगते हैं।

वही लड़की, बहन, सम्पत्ति, घर और परिवार, यह सब गिर्जा-घर में ईश्वर को दे दिया गया था। घर पहुँचते ही

ईश्वर से सब लौटा लिया गया। वह "मेरा", "मेरा", होगया। अब वह ईश्वर का नहीं रहा। वह क्षणिक और चंचल भाव जिसने चित्त पर क़ब्जा कर लिया था, "ऐ ईश्वर! मैं तेरा हूं, मैं तेरा हूँ, सब कुछ तेरा है, मैं सर्वस्व तेरे अर्पण करता हूँ", स्त्री और बच्चों का मुख दिखाई पड़ते ही एक पल में वह भाव ग़ायब होगया।

आप देखते हैं कि आध्यात्मिक उन्नत्ति और अपनी वर्तमान स्थिति में पारिवारिक जीवन एक दूसरे के विपरीत हैं, परस्पर-विरोधी हैं। गिरजाघर में जो कुछ किया गया था, वह घर में उलट दिया गया, बल्कि शायद उससे भी कुछ अधिक किया गया। यह तो पेनीलोपीज़ (Penelopese)* की सी बात हुई। वह दिन भर सूत लपेटा या बटा करती थी और रात आते ही लपेटे या बटे हुए सूत को फिर उधेड़ देती थी, अर्थात् जैसा का तैसा कर डालती थी। इसी तरह से तुम सब के सब गिर्जाघरों में, अपनी अपनी प्रार्थनाओं और उपदेशों में आध्यात्मिक उन्नति रूपी सूत बटते हो और घर में आकर सब बटा हुआ उधेड़ देते अर्थात् खोल देते हो, किया-धरा मिटा देते हो। यदि यही हालत बनी रही, तो कोई आशा नहीं है। यदि तुम ईश्वर से मज़ाक़ नहीं कर रहे हो, यदि अपनी प्रार्थनाओं को तुम पाखंड नहीं बनाना चाहते हो, तो ठीक ढँग से तुम्हें मामले पर ध्यान देना होगा। तुम्हें वह कारण हटाना होगा जो तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति को रोकता है। तुम्हें घर की हालत सुधारना पड़ेगी। प्रत्येक स्त्री को अपने पति का ईसामसीह बनना होगा, और प्रत्येक पति को अपनी स्त्री का त्राता। लोग कहते हैं, "अह! मैं तुम्हें

*ओडेसीज़ की पत्नि का नाम है जो दिन में जितना बुनती थी, रात को उधेड देती थी।

चाहता हूँ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ"। कैसा गपौड़ा है! यदि बस्तुतः तुम अपनी स्त्री या पति को प्यार करते होते, तो उसके लिए कुछ स्वार्थ त्याग करने की भी सामर्थ्य तुममें होती। यदि तुम सचमुच उसे प्यार करती या करते हो, तो उस पर कुछ निछावर भी तुम्हें करना चाहिए। पर क्या तुम कुछ स्वार्थत्याग करते हो? नहीं करते, नहीं करते। स्त्री पति को अधिकार में रखना चाहती है, और पति स्त्री का अधिकारी बनना चाहता है, मानो वह कोई जड़ पदार्थ है जिसका वह अधिकारी हो सकता है, जो उसकी सम्पत्ति हो सकती है। एक दूसरे को अपने अधीन करना चाहता है। यदि सचमुच तुम एक दूसरे से प्रेम करते हो, तो तुम्हें एक दूसरे के हितकी वृद्धि करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्या सचमुच तुम ऐसा करते हो? तुम समझते हो कि मैं ऐसा करता हूं, पर तुम्हारी समझ में भूल है। भाई, स्त्री या पति की इन्द्रिय-वासनाओं की तृप्ति करना उसे सुख पहुँचाना नहीं है, उसे सच्चा सुख देना नहीं है, कदापि नहीं। यदि सुख पैदा करने का यही एक उपाय होता, तो सभी परिवार सुखी होते। क्या ऐसा है? क्या ये परिवार सुखी हैं? हज़ारों में एक भी नहीं। वे सुखी क्यों नहीं हैं? क्योंकि वे यह नहीं जानते कि एक दूसरे का सुख क्योंकर बढ़ावें और एक दूसरे के हितकी वृद्धि कैसे करें? वे यह नहीं जानते। वे समझते हैं कि केवल पाशविक वासनाओं की तृप्ति करना ही सुख बढ़ाना है। एक दूसरे का मिथ्याभिमान पोषण करना, यह वास्तविक हित करना नहीं है। किसी ने कहा है, कि "प्रेम करना तो रंज से संधि करना है" (To love is to make a compact with sorrow). और अधिकांश उपन्यासकारों, ऐतिहा-

सिकों, और इस संसार के लोगों का यही अनुभव है—"प्रेम करना शोक से नाता जोड़ना है"। किन्तु क्या इसमें प्रेम का कोई दोष है, जो वह रंज पैदा करता है ? नहीं। प्रेम का तुम जो उपयोग करते हो, वह दूषित है और वही अपने साथ रंज लाता है।

हिन्दू-धर्मग्रन्थ में एक कथा है कि, भारत के प्रसिद्ध देवता, भारत के प्रभु ईसामसीह, भगवान् कृष्ण को एक बड़ा दैत्य खाये जाता था। उन्हों ने अपने हाथ में एक खंजर ले लिया। वे खा लिये और निगल लिये गये। अपने को अज़्दहे (अजगर) के पेट में देख कर उन्हों ने अज़्दहे का हृदय बेध दिया। हृदय फट गया, अज़्दहा घाव से मर गया, और भगवान् कृष्णचन्द्र बाहर निकल आये। ठीक यही मामला है। प्रेम क्या है ? प्रेम कृष्ण है, अर्थात् प्रेम परमेश्वर है, प्रेम ईश्वर है, और वह हृदय में प्रवेश करता है, विषय-लोलुप मनुष्य के आन्तरिक चित्त में वह पैठ जाता है, वह हृदय में घुस जाता है, और जब आसन जमा लेता है, जब हृदय के अन्तर में उसे स्थान मिल जाता है, तब वह वार करता है। और परिणाम क्या होता है ? हृदय टूट जाता है, हृदय घायल होजाते हैं। फल स्वरूप व्यथा और शोक हाथ लगते हैं। सांसारिक प्रेम के हरेक मामले में रोना और दाँतों का पीसना ही होता है। यही रीति है। यही दैवी-विधान है। यही घटना है। किसी भी सांसारिक पदार्थ से ज्यों ही तुम ने दिल लगाया, किसी भी लौकिक वस्तु को ज्यों ही तुम उस के लिए प्यार करने लगे, त्यों ही कृष्ण भगवान् तुम में प्रवेश करते हैं और तुम्हें घायल करते हैं, हृदय फट जाता है, तुम शोक-पीड़ित हो जाते हो, तुम विलाप और रोदन करने लगते हो; "अरे, यह प्रेम बड़ा निष्ठुर है, इसने

मुझे तबाह कर दिया"।

यह एक दैवी-विधान है कि "इस दुनिया में जो कोई आदमी किसी व्यक्ति या दुनयावी चीज़ से अपना दिल लगावेगा, उसे तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। या तो वह प्रियजन अथवा पदार्थ उससे ले लिया जायगा," या उनमें से एक मर जायगा, या उनमें कलह होजायगी। यह अनिवार्य नियम है। इसे बेपरवाही से न सुनो, अपने हृदयों में इसे (इस सत्य को) गहरा उतर जाने दो, अपने अपने चित्तों में इसे प्रवेश करने दो। जब कभी कोई मनुष्य किसी सांसारिक पदार्थ से अनुराग करता है, जब कभी कोई मनुष्य उस वस्तु में सुखा-न्वेषण की चेष्टा करता है, तब उसे धोखा होता है, वह केवल इन्द्रियों द्वारा ठगा जाता है। लौकिक पदार्थों से अपना दिल लगाकर तुम सुख और आनन्द नहीं पा सकते। यह क़ानून है। तुम्हारे सब सांसारिक प्रेमों की परिसमाप्ति हृदयों के टूटने में होगी, अन्यथा कुछ न होगा। शक्तिशाली मुद्रा (रुपया) पर भरोसा न करो, ईश्वर पर भरोसा करो। इस चीज़ या उस चीज़ पर भरोसा न करो, ईश्वर पर भरोसा रक्खो, अपनी आत्मा या अपने आप पर भरोसा करो। सब सांसारिक स्नेह अपने साथ में दुःख लाते हैं, क्योंकि सांसारिक अनुराग मात्र बुतपरस्ती (आकार पूजा) है। सुन्दर प्रतिमायें सुन्दर मूर्तियाँ इत्यादि बनादी जाती हैं, वे सब शरीर भी मूर्ति, प्रतिमा हैं, वे सब पुतले, चित्र, प्रतिमूर्ति हैं। तुम एक चित्र को ही प्यार करने लगते हो, और जिस व्यक्ति का वह चित्र है, उसकी उपेक्षा करते हो। क्या इससे तुम बुतपरस्ती नहीं कर रहे? कल्पना करो कि तुम्हारे पास तुम्हारे एक मित्र का चित्र है, और उसे तुम अपने साथ रखते हो, तुम्हें उससे प्रेम है, उसे चूमते-चाटते हो, वह तुम्हारा पूर्ण प्रेम-पात्र

है, यहां तक कि वह मनुष्य, जिसका वह चित्र है, जब तुम्हारे घर में आता है, तब तुम उसकी चिन्ता नहीं करते, उसका अनादर करते हो। क्या यह ठीक है? क्या यह उचित है? क्या वह मित्र अपना चित्र तुम्हारे पास छोड़ेगा? नहीं, नहीं। उसने अपनी तसवीर तुम्हें इस लिए दी थी कि तुम उसे याद रक्खो। उसने अपनी तसवीर तुम्हें इस लिए नहीं दी थी कि तुम उसे भूल जाओ। वह चित्र तुम्हारा पूज्य नहीं होना चाहिए था। चित्र को चित्र की खातिर ही प्यार करने लगना बुतपरस्ती थी। तुम्हें ईश्वर को प्यार करना था, तुम्हें मालिक को, चित्र के स्वामी को प्यार करना था। इसी तरह, इस संसार में सब चीज़ें ईश्वर का चित्र, चिन्ह मात्र हैं। स्त्रियां और पति इन चित्रों के शिकार होते हैं। वे बुतपरस्ती का शिकार बनते हैं, और मूर्ति के गुलाम हो जाते हैं। तुम्हारी इंजील तुम्हें बताती है कि तुम्हें कोई मूर्ति न स्थापित करना चाहिए, ईश्वर की प्रतिमा न बनाना चाहिए, और तुम्हें मूर्ति पूजा न करना चाहिए। "मूर्ति पूजा" शब्द से यह मतलब नहीं था कि तुम्हें इन प्रतिमाओं की उपासना न करना चाहिए। मतलब यह था कि ये जीती-जागती मूर्तियां हैं, मूर्ति के फेर में पड़ कर असली को न भूल जाओ, यह अभिप्राय था।

भारत में एक क़ब्रिस्तान में राम ने एक क़ब्र पर एक अभिलेख देखा, जो इस प्रकार था:—

"Here lies the babe that now is gone,
"An idol to my heart.
If so, the wise God has justly done
,T was needful we should part."

"यहां वह बच्चा लेटा हुआ है जो अब चला गया है,

जो मेरे हृदय (मन्दिर) की प्रतिमा था।
यदि ऐसा था, तो बुद्धिमान ईश्वर ने ठीक ही किया है,
हमारा जुदा होजाना ज़रूरी था"।

यह एक महिला से लिखा गया था। वह उस बच्चे को बेहद चाहती थी। वह मूल से, उस असली से, जिसका चित्र मात्र बच्चा था, बच्चे को अधिक मानने लगी थी, और इस लिए बच्चे का हरण उचित ही था। यही दैवी-विधान है, यही नियम है। यदि तुम चित्रों का ठीक उपयोग करोगे, तो वे तुम्हारे पास रहेंगे, यदि उनका दुरुपयोग करोगे, तो विच्छेद, रंज, चिन्ता, और भय होगा। ठीक उपयोग करो। हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, किन्तु तभी, जब हम असली को अधिक प्यार करें, उसको चित्र से अधिक प्यार करें। केवल तभी हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, अन्यथा कदापि नहीं। यही दैवी-विधान है। यही त्याग है।

इस ढंग से हरेक घर में संन्यास का अभ्यास किया जाना चाहिए।

और अच्छी तरह यह समझाया जायगा, देखिये। पुरुष या नारी, सज्जन या महिला, देवता या देवी, आप यहां हैं। वहां आपका प्रेम-पात्र है। कौनसी चीज़ आपको मोहती है, आपको खींचती है, आपको प्रेमपाश में बांधती है? क्या उसकी देह, उसकी त्वचा, उस के नेत्र, नाक, कान इत्यादि? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। आप कवियों की अपेक्षा अधिक युक्तिसंगत और विवेकी, यथार्थवादी (rational) बनो। वास्तव में ये चीज़ें तुम्हें नहीं आकर्षित करतीं। यदि ये प्रेम की पात्र होतीं, यदि इन में कोई मोहनी शक्ति होती, तो वे देह के प्राण रहित होजाने पर भी चित्ताकर्षक बनी रहतीं। जब प्राणी मर जाता है, उस दशा में भी

तुम शरीर से आकर्षित हुए होते, किन्तु उस समय तुम नहीं आकर्षित होते। तो फिर जादू किस में था? किस ने यह मोहनी बल अर्थात् आकर्ष और जादू उत्पन्न किया था? यह तो काम भीतरी तत्त्व का था, अन्तर्गत "जीवन" का था, आन्तरिक शक्ति का था, भीतर की 'आत्मा' का था, और किसी का नहीं। यह भीतर का परमेश्वर है जो हरेक के नेत्रों के द्वारा तुमसे बातचीत कर रहा है। शरीर भीतरी परमेश्वर का चित्र, प्रतिमूर्ति, या पौशाक है। पौशाक को पहनने वाले व्यक्ति (देही) से, भीतरी असलियत से अधिक न प्यार करो। अपने भीतर विचार करो और तुम समझ जाओगे।

कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक चित्ताकर्षक होते हैं, उनमें शोभा अधिक होती है। जिस विषय की चर्चा करने की चाल नहीं है, उस पर यदि "राम" कुछ कहता है, तो क्षमा करियेगा। यह एक विचित्र बात है कि हम उन बातों को नहीं सुनते जो हमारे चित्त को बहुत ही अधिक भाती हैं। साधारणतः इस विषय की चर्चा करने की चाल नहीं है। किन्तु चूँकि यह विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और वास्तव में तुमसे वास्ता रखता है, और दूसरे लोग भी इस विषय पर नहीं बोलते, इसी कारण से "राम" इस पर बोलता है।

अच्छा, यह सौन्दर्य्य वा शोभा है, और सौंदर्य्य वा शोभा कहां से आती है? शोभा, चेष्टा और उद्योगिता (उत्साह) क्या वस्तु है? वह क्या है? क्या वह आँख, कान, या नाक के कारण से है? नहीं, नेत्र, कान, इत्यादि में तो वह प्रगट होती है। तुमने क्लियोपैट्रा, (Cleopatra) उस मिस्री युवती, आफ्रिका-वाली क्लियोपैट्रा, उस हबशी बाला का वृत्तान्त सुना होगा।

उसने उस सम्राट (ध्यान रहे) एँटोनी को मोह लिया, लुभा लिया, और तसवीर बना दिया। यह सब सुन्दरता के द्वारा हुआ। सुन्दरता वा शोभा तुम्हारे भीतर के परमेश्वर से मिलती है, और किसी दूसरी चीज़ से नहीं। वह कर्मण्यता (activity) है। कर्मण्यता, उद्योग शक्ति या गति किस के कारण से है? देखिये। तुम मार्ग चल सकते हो, ढालू पहाड़ोंपर चढ़ सकते हो, तुम इधर उधर विचर सकते हो, जहां चाहो जा सकते हो। किन्तु देहान्त होने पर क्या होजाता है? प्राणान्त होने पर, वह उद्योगिता वा कर्मण्यता, तुम्हारे भीतर का वह ईश्वर, जो तुम्हें ऐसी ऐसी ऊँचाइयों पर उठा लेजा-सकता था, पहले जैसी सहायता किया करता था वैसी अब नहीं करता। तो फिर इस शरीर के अन्दर कौन है जिसके कारण नसें डोलती हैं, बाल बढ़ते हैं, आपकी नाड़ियों में रक्त का सञ्चार होता है? वह कौन है?' शरीर के अंगों को यह सब चाल, शक्ति, फुर्ती देने वाला कौन है? वह कौन है? वह एक "विश्वव्यापी शक्ति" है, एक "विश्वेश्वर" है, जो तुम वस्तुतः हो, वह "आत्मा" है। जब कोई मनुष्य मर जाता है, तब कुछ आदमियों को उसे श्मशान या क़ब्रिस्तान उठा कर ले जाना पड़ता है। और जब वह ज़िन्दा था तब वह कौन चीज़ थी जो उसका मनों भारी बोझ बड़ी बड़ी उंचाइयों पर, ऐसे पहाड़ों पर उठा ले जाती थी? वह कोई अदृश्य, अवर्णनीय वस्तु है, परन्तु है अवश्य। वह तुम्हारे अन्दर आत्म-देव है, वह हरेक शरीर में परमात्मा है, और वही परमेश्वर हरेक वस्तुको शक्ति और कर्मण्यता प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति की गति वा चेष्टा में शोभा का कारण भी वही परमेश्वर है। जब कोई मनुष्य सोया होता है, तब उसके नेत्र नहीं देखते; जब वह सोया होता है, तब

उसके कान नहीं सुनते। जब मनुष्य मर जाता है, तब भी उसके नेत्र जहाँ के तहाँ रहते हैं, पर वह देखता नहीं, उसके कान ज्यों के त्यों रहते हैं, पर वह सुनता नहीं। क्यों? क्योंकि भीतर का वह ईश्वर या आत्मदेव अब उसी तरह सहायता नहीं करता जैसे पहिले करता था। वह भीतर का ईश्वर ही है जो नेत्रों के द्वारा देखता है, वह भीतर का ईश्वर ही है जो कानों को सुनवाता है, वह भीतर का ईश्वर ही है जो नाक को सूँघने की शक्ति देता है, और सब रगों का शक्तिदाता भी वही भीतरी ईश्वर परमात्मा ही है। अन्तर्गत ईश्वर ही समस्त वाह्य शोभा या सौन्दर्य्य का सारांश तत्त्व है। यह सब अन्तर्गत परमेश्वर है। इसे याद रक्खो। इस पर ध्यान दो। तुम्हारे सामने कौन है? जब तुम किसी व्यक्ति की ओर देखते हो, तब तुमसे नज़र कौन मिलाता है? वही भीतर का ईश्वर। बाहरी नेत्र, त्वचा, कान, इत्यादि आवरण मात्र हैं। वे केवल बाहरी वस्त्र हैं, और कुछ नहीं।

इस दुनियां में जब लोग पदार्थों को प्यार और उनकी इच्छा करने लगते हैं, तब वे भीतर की असलियत की अपेक्षा पोशाक को, वस्त्र को अधिक प्यार करने लगते हैं, जिस पोशाक के द्वारा कि वह (भीतर की असलियत) चमकती है। इस प्रकार वे भीतर के सत्य, मूल, और तत्त्वकी अपेक्षा वस्त्रों, वाह्य रूपों वा आकारों को अधिक प्यार और पूजा करते हैं। इसी से लोग दुःख उठाते हैं और इस पाप के कुफल को भोगते हैं। यह बात है। इससे ऊपर उठो, इससे ऊपर उठो। प्रत्येक स्त्री और पति को एक दूसरे में परमेश्वर को देखने का यत्न करना चाहिए। भीतरी ईश्वर को देखो, भीतर के ईश्वर की पूजा करो।

हरेक वस्तु तुम्हारे लिए ईश्वर बन जानी चाहिए। नरक

का खुला फाटक (द्वार) होने के बदले स्त्री को पति के लिए दर्पण के समान होना चाहिए, जिस में वह परमेश्वर के दर्शन कर सके। पति को भी नरक का खुला द्वार होने के बदले स्त्री के लिए दर्पण के समान होना चाहिए जिसमें वह भी परमेश्वर को देख सके।

कोई स्त्री अपने पति को, या पति अपनी स्त्री को, यह अनुभव, यह ईश्वरत्व, सब शक्तियों की यह वेदान्तिक एकाग्रता, कैसे प्राप्त करा सकती है? यह वे कैसे कर सकते हैं।?

यदि किसी स्त्री को अपने पति का उद्धार करना है, तो पहले उसे अपने पति को सब बाहरी गन्दगियों से बचाना होगा। यदि पति अविवाहित है, तो वह सब तरह के प्रलोभनों का शिकार बन सकता है। वह बेपतवार की नौका की तरह है, जो सब पवनों और तूफानों के वश में है, चाहे वे किसी दिशा से भी चलें। जब तक कोई मनुष्य अविवाहित है, बिना आत्मिक ज्ञान के है; जब तक वह अविवाहित है, तब तक सब ओर से उसे सर्व प्रकार की गन्दगियां भोगना पड़ती हैं, और स्त्री को पहले इन प्रलोभनों से अपने पति को बचाना चाहिए। पर अब होता क्या है? साधारणतः स्त्रियां इन प्रलोभनों से अपने पतियों को नहीं बचातीं, किन्तु वे (स्त्रियां) स्वयं उनके कंधों पर भारी बोझ हो जाती हैं। यह तो ठीक ऐसा ही है कि कोई मनुष्य अपने सब रूपए देकर बड़ी रकम का एक नोट खरीद ले। वह दूसरे प्रलोभनों के बोझ से छूट गया है, परन्तु अब की यह आधीनता पिछली सब आधीनताओं (Humiliations से अधिकबोझल है। अब वह पहले के से प्रलोभनों के अधीन नहीं है, किन्तु अब यह एक ही प्रलोभन या अधीनता उस के लिए काफ़ी है।

यह हाल ठीक उस घोड़े का सा है जो बचाव के लिए एक मनुष्य के पास गया था। आप जानते हैं कि एक समय था जब मनुष्य भी बन में रहता था, घोड़ा भी जंगल में रहता था। हिरन और बारह सिंगे भी जंगल में रहते थे, जैसे कि आज-कल। एक बार एक घोड़ा लड़ाई में बारहसिंगे से हार गया। बारहसिंगे ने अपने सींगों से घोड़े को घायल कर दिया। घोड़ा सहायता के लिये मनुष्य की शरण में गया। मनुष्य ने कहा, "बहुत अच्छा, मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मेरे हाथ में तीर हैं। तुम मुझे अपनी पीठ पर चढ़ालो, और मैं जाकर तुम्हारे दुश्मनों को मार दूंगा"। आदमी घोड़े की पीठ पर सवार हुआ, जंगल में गया और बारहसिंगे का बध किया। वे विजयी होकर घर लौटे। घोड़ा बड़ा खुश था। अब घोड़े ने जाना चाहा। घोड़े नें मनुष्य को धन्यवाद दिया और कहा, "जनाब! मैं आपको धन्यवाद देता हूं। अब मैं विदा होना चाहता हूं"। आदमी आया और बोला, "ऐ घोड़े!! ऐ घोड़े!! तुम कहां जाओगे? चूँकि अब मुझे मालूम होगया है कि तुम बड़े काम की चीज़ हो, मैं तुम्हें जाने न दूंगा। तुम्हें मेरा चाकर होना पड़ेगा, तुम्हें मेरा गुलाम बनना होगा"। घोड़ा बारहसिंगे, हिरन, और वन के अन्य पशुओं से बच गया, किन्तु उसकी स्वाधीनता जाती रही। और गुलामी, जो उसकी बाहरी सफलता का नतीजा थी, उसकी स्वाधीनता की हानि की पूर्ति नहीं करती थी।

यही हाल मनुष्य का है। विवाह के बाद वह बहुतेरे प्रलोभनों से बच जाता है, किन्तु एक प्रलोभन, गुलामी या पराधीनता जो स्त्री के सम्बन्ध से प्राप्त हुई है, ठीक उसी बर्ताव के तुल्य है जो मनुष्य ने घोड़े के साथ किया था।

अच्छा, अब स्त्री पुरुष को बचानेवाली कैसे हो?

वह उसे कुछ प्रलोभनों से बचाती है। इस बात की जहांतक दौड़ है, यह बहुत अच्छी है, बहुत ठीक है। अब दूसरी बात यह है कि उसे मनुष्य को गुलामी में न जकड़ना चाहिए। (अमेरिका वाले कहते हैं कि उन्हों ने फिलीपाइन (Philippines) निवासियों को जीता है, किन्तु यदि वे सावधान न रहे, तो वे गुलामी में फँस जाँयगे।) यह कैसे हो सकता है? स्त्री को अपने पति को गुलाम बनाने का यत्न न करना चाहिए, और पतिको स्त्री अपने अधीन न करनी चाहिए। यह अब दूसरा क़दम है। यदि यह किया जासके तो आशा है, अन्यथा कोई आशा नहीं। यह एक ऐसी बात है जो कभी नहीं या बहुत कम तुम्हारे ध्यान में लाई जाती है, परन्तु है यह एक तथ्य। आप जानते हैं कि हज़-रत ईसा मानवजातिका उद्धारकर्ता माना गया था, और यह कहा गया था कि वह सारे विश्व का उद्धार करेगा, सारा पोप धो डालेगा, और स्वर्ग का साम्राज्य भूमि पर ले आवेगा, किन्तु आप की सब इंजीलों, कुरानों, और वेदों के होते हुए भी, इन सब के होते हुए भी, दुनियाको हम वैसी ही अधा-र्मिक अब भी पाते हैं, जैसी पहले थी। कारण क्या है? कारण यह है कि दोष के असली मूल का उच्छेद नहीं किया गया है। वास्तविक कठिनता आपके परिवार-मण्डल में है। जब तक स्त्री पतिका सच्चा हित करने की न ठान लेगी, और पति स्त्रीका हित करने को न ठान लेगा, तब तक धर्मका अभ्युदय नहीं होसकता, धर्म के लिए कोई आशा नहीं है।

आप जानते हैं कि यह भाफ और बिजली का ज़माना (समय) है। धर्म को गठरी बाँध कर चल देना चाहिए। ऐ ईसाइयो! ऐ हिन्दुओ! ऐ मुसलमानों! यदि तुम सच-मुच यह चाहते हो कि संसार की मुसीबत निर्मूल होजाय,

यदि तुम चाहते हो कि मानव जाति की व्यथा दूर हो जाय, तो तुम्हें इस पर ध्यान देना चाहिए, वैवाहिक सम्बन्धों को सद्भावों पर स्थापित करना चाहिए, तुम्हें हरेक महिला और भद्र पुरुष के हृदय में यह उतार देना चाहिए कि अपनी स्त्री वा अपने पति के लिये इसामसीह बनना उसका अपना कर्त्तव्य है। यह हमारा अवश्य कर्त्तव्य है, ईसा बनने को हम बाध्य हैं। और यह कैसे हो सकता है? यदि स्त्री पति को दास न बनाना चाहे और पति स्त्री को अपने अधीन न करना चाहे, तो यह हो सकता है। सब को अपने आप से मुक्त करो, तो तुम स्वाधीन हो जाओगे। यही दैवी-विधान है। "क्रिया और प्रति क्रिया-बराबर और आमने सामने (उलटी) होती हैं" स्त्री को अपने अधीन बनाओ, उसे अपना गुलाम बनाओ, और तुम भी गुलाम हो जाओगे। अह! अत्यन्त विकट वक्तृता है। सत्य सदैव अप्रिय है, विकट है। हज़रत ईसा ने यह विकट सत्य सिखाया था, और उसे पीड़ा पहुँचाई गयी, अर्थात् उसे सूली मिली। सुक़रात आया और उसे विष दिया गया। सत्य को प्रसन्नता से लोग कभी नहीं ग्रहण करते। यह कथन दारुण मालूम होता है, पर है ऐसा ही। ज़रा ध्यान दो।

एक आदमी ने एक बैल के गले में एक रस्सी डाल रक्खी है, वह बैल के सींगों में बंधी हुई है, और रस्सी का दूसरा सिरा वह अपने हाथ में पकड़े है। वह समझता है कि बैल उसका नौकर है, उसका गुलाम है, किन्तु वह भी बैल का ठीक उतना ही गुलाम है जितना बैल उसका। किस कारण से वह बैल को अपने अधिकार में बतलाता है? इस लिए, कि बैल उसे छोड़ नहीं सकता। अब ख़याल करो, यदि यही एक कारण है कि बैल उसे छोड़ नहीं सकता, तो हम

कहते हैं कि वह भी तो बैल को छोड़ कर नहीं जा सकता। क्योंकि वह बैल को नहीं छोड़ सकता इस लिए बैल उसे नहीं छोड़ सकता। यदि वह बैल को छोड़ सकता, यदि वह आज़ाद होता, यदि वह बैल का ग़ुलाम न होता, तो बैल उसका ग़ुलाम न होता। यही दैवी-विधान है।

क्या तुम यह नहीं देखते कि सब कुटुम्ब कष्ट भोग रहे हैं? क्या यह तथ्य नहीं है? क्या यह तथ्य नहीं है कि सब परिवार इस संसार में, यूरोप में, अमेरिका में, भारतवर्ष में, जापान में, सब कहीं, कष्ट भोग रहे हैं? लोग कहते हैं, "सुखी घर, सुखी घर"। कैसी प्रवञ्चना(humbug)है! कैसा ज़बानी जमाख़र्च है! कोरी बात चीत, केवल स्वप्न है!! यह क्या बात है कि लोग कष्ट पा रहे हैं, और घर सुखी नहीं हैं? और क्या तुम अपने अन्तः हृदय से नहीं चाहते कि परिवार सुखी हों? यदि तुम सुख चाहते हो, तो उत्सुक बनो, घर को एक बड़ा मज़ाक न बनाओ! उत्सुक बनो, सच्चे बनो, कारण का पता लगाने की चेष्टा करो। उसे जाँचो, उस की छान-बीन करो, उसका अनुसन्धान करो, और तुम देखोगे कि परिवारों में फूट और सद्भाव के अभाव का केवल यही एक कारण है कि वे प्रकृति के क़ानूनों को नहीं जानते हैं, और मूढ़ हैं। वे अज्ञान रूपी दैत्य के क़ब्ज़े में हैं। वे नहीं जानते कि प्रकृति की योजना (Plan of Nature) क्या है, विकास का पंथ किधर है। वे यह नहीं जानते। "राम" तुमसे कहता है कि जिस रास्ते से विकास चलता है और यह सारी प्रकृति काम करती है, वह यह है कि हरेक क़दम ब क़दम, धीरे धीरे, अपने भीतर के ईश्वर की प्राप्ति के निकट पहुँचता जाय। यही पंथ है, यही रेखा है जिस पर इस संसार के सब चमत्कार चल रहे हैं। हरेक

को अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करना चाहिए। भीतर के ईश्वर का अनुभव प्राप्त करके हरेक को पूर्ण आत्मा, पूर्ण ईश्वर हो जाना चाहिए। लोग इसे हृदयङ्गम नहीं करते, इसी लिए यह सब जीवन-संग्राम है।

अपनी स्त्री या पति से अपना सम्बन्ध ऐसा स्थापित करो कि ठीक मार्ग पर उन्नति हो; कि तुम प्रकृतिकी योजना (Plan) के अनुकूल काम कर सको। प्रकृति की कल्पना (Plan) है "स्वाधीनता! स्वाधीनता!! स्वाधीनता!!!" अपनी स्त्री को अपने से मुक्त कर दो, और तुम उससे (उसके बन्धन से) मुक्त होजाओगे। इसका अर्थ क्या है? क्या इसका यह अर्थ है कि सब बन्धन तुरन्त तोड़ दिये जांय, फ़ौरन काट दिये जाँय, गार्डियन ग्रन्थि (Gordian Knot)* की तरह काट दिये जांय? क्या यही अभिप्राय है? क्या इसका यह अर्थ है कि हरेक नर इस संसार में खुल्ला छोड़ दिया जाय और प्रत्येक नारी नितान्त निरंकुश हो जाय? नहीं, कदापि नहीं। इस तरह से स्वाधीनता नहीं मिल सकती, यह तो दासता हुई, गुलामी है। संगी को "स्वतंत्र" बनाने से यह मतलब है कि तुम उसे ऐसा बनादो कि वह तुम्हारे अन्तर्गत ईश्वर पर विश्वास या भरोसा करे, न कि तुम्हारी देह पर। जब तुम उसे प्यार करो या वह तुम्हें प्यार करे, तब तुम उसके अन्तर्गत ईश्वर से प्रेम करो और उसे अपने अन्तर्गत

---

*एक पेचीदा गांठ जिसको फारिगया के बादशाह गार्डियन ने अपनी गाडी के एक सिरे में लगाई हुई थी और यह घोषणा दे रक्खी थी कि जो कोई इसे खोलेगा वह एशिया का बादशाह हो जायगा। सिकन्दर ने इस का हाथ से खोलना कठिन देख कर इसे तलवार से काट दिया, जिससे इस का नाम गार्डियन सर से प्रसिद्ध हो गया। अभिप्राय अति कठिन वा पेचीदा गांठ से है।

ईश्वर का प्रेमी बनाओ। लोग कहते हैं कि "हम सब के सब ईसामसीह पर विश्वास करते हैं।" "राम" कहता है कि तुम्हें अपनी स्त्रियों और पतियों पर विश्वास करना चाहिए। "राम" कहता है, "अपने संगी के मांस पिंड पर विश्वास न करो, अन्तर्गत ईश्वर पर विश्वास करो।" इस बाहरी खाल और मांस को पर्दे के तुल्य जानो और इसे आप अपने लिए पारदर्शी बनालो, तथा पर्दे के पार भीतर के ईश्वर को देखो।

हम को पक्षी की तरह होना चाहिए जो एक मुहूर्त में उस झूलती हुई फुनगी (शाखा) पर उतर पड़ता है। उसे फुनगी (डाली) के झुकने का बोध होता है, किन्तु निर्भय गाता रहता है, यह जानता हुआ कि उसके पँख हैं। फुनगी ऊपर नीच झूलती है, पर पक्षी भयभीत नहीं होता, क्योंकि यद्यपि वह फुनगी (डाली) पर बैठा हुआ है, तथापि अपने परों के भरोसे है, ऐसा समझो। पक्षी जानता है कि वह डाली पर भरोसा नहीं कर रहा हैं, बल्कि अपने परों पर। यही ढंग है। उसका भरोसा उस डाली पर नहीं है जिस पर वह बैठा हुआ है; वह अपने पंखों पर भरोसा करता है।

इसी तरह जहां कहीं तुम हो, अपनी स्त्री और बच्चों से कितनेही अनुरक्त क्यों न हो, किन्तु उन में दिल न लगाओ। हृदय को परमेश्वर के साथ रक्खो, दिल को अपने भीतर के परमात्मा से लौ लगाये रहो। यही उपाय है। तुम स्वयं ऐसा बर्ताव करो, और अपनी स्त्री तथा बच्चों से भी ऐसाही बर्ताव करवाओ। तुम उन से मुक्त होजाओगे, और वे तुमसे मुक्त होंगे। पराधीनता का नाम नहीं, स्वाधीनता! स्वतंत्रता!! इस तरह हरेक अमेरिका-निवासी स्वाधीन

हो सकता है।

व्याख्यान का रोचक अंश अब आता है।

एक स्थान पर एक अत्यंत सुन्दर चित्र देखागया। उस चित्र या तसवीर में एक बड़ा अच्छा कौच (आसन; couch) था। उस आसन पर बड़े उज्ज्वल शाही गद्दे और तकिए थे। एक बड़ी सुन्दर रानी उस आसन पर लेटी हुई थी, एक ओर कौच के बच्चे थे, और राजा एक कुर्सी पर बैठा था। तसवीर बड़ी अच्छी थी, बड़ी मनोहर थी, अति शोभित थी। रानी बहुत बीमार थी। मरणासन्न थी। उसका पति, राजा, आंसू गिरा रहा था, और उसका बेटा तथा बेटी रो रहे थे। यह एक सुन्दर चित्र था। क्या आप इस तसवीर के अधिकारी होना पसन्द करेंगे। अहा! अवश्य, हरेक तुममें से पसन्द करेगा। यह चित्र इतना मनोहर था कि यदि आप इसे देखते तो आप ख़रीद लेते। क्यों आप इस चित्र के अधिकारी होना चाहेंगे? इसमें एक ऐसी मनोहरता थी जो आपको मंत्र-मुग्ध सा बना देती। किन्तु क्या वह मरणप्राय रानी होना आप पसन्द करते? उत्तर दीजिये। वह रानी होना क्या आप पसन्द करते? वह बड़ी अमीर थी, किन्तु मरणासन्न थी। और क्या वह रोता हुआ पति या बिलखते हुए बच्चे होना आप पसन्द करते? नहीं।

वेदान्त चाहता है कि तुम अपने घरों में, अपने परिवारों में ईश्वर की तरह रहो; अपने मकानों में गवाह की तरह, निर्विकार ईश्वर की तरह, अनासक्त रहो, किसी तरह से मिले या उलझे हुए न रहो। अपने मन को सदा स्थिर रक्खो, सदा अनासक्त रक्खो, अपने चित्त और हृदय को सदा अन्तर्गत परमेश्वर पर जमाये रहो, और सब घरेलू मामलों को उसी तरह देखो जिस तरह तुम उस चित्र को देखते। आप जानते हैं कि जब आप साक्षी की तरह इसे देखते हैं

तब यह सुख का कारण होता है; जब आप इस में उलझ जाते वा आसक्त होते हैं, तब यह मुसीबत का सामान बन-जाता है। यदि इस संसार के व्यापार में हम फँस जाते हैं तो हमारी बड़ी दुर्दशा होती है। जब निर्विकार स्थिति-विन्दु से साक्षीवत् हम इसे देखते हैं, तब हमें आनन्द आता है, तब यह अति रुचिर होजाता है। इसी तरह, अन्तर्गत परमेश्वर को प्राप्त करो। राम के सब व्याख्यान सुनो, धीरे धीरे उन्नति करते हुए तुम्हें विश्वास होजायगा। राम ज़िम्मा लेता है कि इस संसार का कोई भी व्यक्ति यदि राम के सब व्याख्यान सुन लेगा तो उसके संशय दूर हो जांयगे, अपनी ईश्वरता में उसे अवश्य विश्वास होजायगा। पहले अपनी दिव्यता तथा ईश्वरत्व में गहरा विश्वास (पक्का निश्चय) प्राप्त करो। इसे पालो, फिर उस विधि से, वा उन उपायों से, जो बताये जांयगे, तुम उस परमेश्वर में अपना केन्द्र जमाओ, वही होजाओ, शाश्वत और सर्वशक्तिमान परमेश्वर अपनेको अनुभव करो। "वही मैं हूँ, वही"। यह अनुभव करो और अपने सब घरेलू संबन्धों तथा इन सब मामलों को इस तरह देखो कि मानो वे वह तसवीर हैं, मानों तुमसे कोई लगाव ही नहीं है। यह विपरीत और स्वतः विरुद्ध जान पड़ता है। लोग कहते हैं कि यदि हम इन मामलों में न उलझें तो कोई उन्नति करही नहीं सकते। अरे! तुम भ्रान्त हो। उन मामलों में फँसते ही तुम्हारी उन्नति रुक जाती है। जब तुम लिखते हो, तब लिखना अव्यक्ति (अकर्तृक) भाव से होता है। उस समय तुम्हारा अहं-भाव, तुम्हारा तुच्छ अहंकार, मिथ्या अहं बिलकुल ग़ैरहाज़िर होता है; और अनायास, यंत्र-भाव से काम किया जा रहा है। यह एक प्रकार से प्रतिक्रिया रूप कर्म है, हाथ अपने आप लिखता

जारहा है। क्यों? क्यों कि तुम अपने तुच्छ अहंकार को, स्वार्थी अहं को, मामले में नहीं घुसेड़ते। ज्यों ही तुम अपने चित्त में विचारने लगोगे, "अहः मैंने खूब ही लिखा है, मैंने कमाल किया है," त्यों ही तुम भूल कर बैठोगे।

इस तरह हम देखते हैं कि काम केवल तभी होता है, जब हम तुच्छ स्वार्थी अहं से छुटकारा पा जाते हैं। जिस क्षण तुम ने स्वार्थी अहं का रंग जमाया, उसी क्षण काम बिगड़ा। सर्वोत्तम काम वही काम होता है जो अकर्त्तत्व-भाव से किया जाता है। त्याग का अर्थ है इस छोटे व्यक्तिगत, स्वार्थी अहं से छुटकारा पाना, जीव की इस मिथ्या कल्पना को दूर करना। सूर्य चमकता है। सूर्य में यह भाव नहीं है कि वह काम कर रहा है। परन्तु सूर्य अहंकार [वैयक्तिक भाव] से रहित है, इसी से वह इतना मनोहर और चित्ताकर्षक है। नदियां बहती हैं। उनके बहने में कोई तुच्छ वैयक्तिक अहं-भाव नहीं है, किन्तु काम हो रहा है। दीपक जलता है, किन्तु व्यक्तिगत अहं-भाव—"मैं महान् हूँ, मैं जल रहा हूँ, मैं प्रकाश कर रहा हूँ"—जलने का काम नहीं कर रहा है। फूल खिलते हैं और चारों ओर मधुर सुगंधि फैलाते हैं, किन्तु उनमें इस भाव का लेश भी नहीं है कि वे बड़े मधुर हैं, बड़े रुचिर हैं।

इसी तरह तुम्हारा काम स्वार्थमय अहंकार (अहम्मन्यता) के दूषण से निर्मुक्त होना चाहिए। आप अपना काम ठीक नक्षत्रों और सूर्य्य के काम के समान होने दो, अपना काम चन्द्रमा का सा होने दो। तभी तुम्हारा काम सफल हो सकता है। केवल तभी तुम इस संसार में कुछ वस्तुतः कर सकते हो। सब नायक, सब धीसम्पन्न पुरुष यह रहस्य रखते थे, सब तालों में लगने वाली यह पर ताली (master key)

उनके अधिकार में थी। उन्हों ने अपने को अकर्तृत्व दशा में डाल दिया, और तभी उनका कार्य इतना फल फूल सका। यही नियम है। इस भ्रान्त-विचार को त्याग दो कि जब तक किसी मामले में तुम अपने को आसक्त न कर लो तब तक तुम्हारा अभ्युदय कदापि न होगा। ऐसा विश्वास करना तुम्हारी भूल है।

दैवी-विधान यह है कि मनुष्य तो शान्त, स्थिर, और अचञ्चल हो, और शरीर सदा कर्मण्य रहे। चित्त स्थिति-शास्त्र [स्टेटिक्स; Statics] के नियमाधीन रहे और देह गति-शास्त्र [डाइनेमिक्स; Dynamics] के नियमाधीन हो। बाह्य शरीर काम करता रहे और भीतरी अपना आप सदा स्थिर रहे, यही दैवी-विधान है। स्वाधीन बनो। वस्तुओं को ठीक उसी तरह कोमलता से स्थित रहने दो जिस तरह नयनगोचरी भूत भूप्रदेश [Landscape] नयनों पर स्थित रहा करता है। दृष्टि गोचर प्रदेश नेत्रों पर सचमुच, पूरी तरह, समग्रता से, अवस्थान करता है, किन्तु अति कोमलता से। वह नेत्रों पर बोझ नहीं डालता। सम्पूर्ण भूभाग [landscapes] का अवस्थान नेत्रों पर है, किन्तु नेत्र स्वाधीन हैं, भार से दबे नहीं हैं। तुम्हारे घरेलू मामलों में, तुम्हारे पारिवारिक या सांसारिक जीवन में तुम्हारी स्थिति भी ठीक ऐसी ही होनी चाहिए। तुम इन सब व्यापारों को देखो और निर्लिप्त बने रहो, स्वतंत्र रहो। और यह स्वाधीनता मिल सकती है केवल सच्चे आत्म-ज्ञान के द्वारा, पूर्ण तत्त्व के अनुभव द्वारा, जिसे वेदान्त कहते हैं। सच्चे आत्मदेव का अनुभव करो, और सब नक्षत्र तथा तारागण तुम्हारी आज्ञा पालेंगे।

Roll on, ye suns and stars, roll on,
Ye motes in dazzling Light of lights,
In me, the Sun of suns, roll on.

O orbs and globes, mere eddies, waves
In me the surging oceans wide
Do rise and fall, vibrate, roll on.

O worlds, my planets, spindles turn;
Expose me all your parts and sides,
And dancing, bask in light of life.

Do suns and stars or earths and seas
Revolve the shadows of my dream ?
I move, I turn, I come, I go.

The motion, moved and mover I,
No rest, no motion, mine or thine.
No words can ever me describe.

Twinkle, twinkle, little stars,
Twinkling, winking, beckon, call me.
Answer, first, O lovely stars!
whither do you sign and call me ?
I'm the sparkle in your eyes,
I'm the life that in you lies.

तात्पर्यः—

बढ़े चलो, तुम सूर्यों और नक्षत्रो, लुढ़कते रहो,
प्रकाशों के चमत्कृतकारी प्रकाश में तुम कणों
(अर्थात् कण मात्र हो)
मुझ सूर्यों के सूर्य में, लुढ़कते रहो।
भँवर मात्र ए ग्रह-मण्डलों और भूगोलो,
तरंगाकुल विशाल समुद्रो लहरो (की तरह) मुझमें
उठो और गिरो,
आन्दोलित हो, लुढ़कते चलो।
ए लोको, मेरे ग्रहो, धुरों पर घूमो ;
अपने सब अंग और पार्श्व मुझे दिखाओ,
और नाचते हुए, जीवन के प्रकाश में तपो।

सूर्यों और नक्षत्रो या भूमियो और समुद्रो
चक्कर देते रहो मेरे स्वप्न की प्रतिच्छाया को,
मैं चलता हूं, मैं फिरता हूं, मैं आता हूं, मैं जाता हूं।

गति, गतिमान् और गतिकारक मैं (हूं)।
न विश्राम, न गति है मेरी या तेरी।
कोई शब्द मुझे कदापि वर्णन नहीं सकता।

चमको, चमको, छोटे तारो!
चमकते हुए, पलकते हुए, संकेत करो, मुझे पुकारो।
उत्तर पहले दो, ए सुन्दर तारो!
कहाँ के लिए संकेत तुम्हारा, कहां मुझे बुलाते हो?
तुम्हारे नयनों की प्रभा हूं,
तुम में जो जीवन वह मैं हूं।

यह है तुम्हारा सच्चा अपना आप। तुम वास्तव में जो कुछ हो वह यह है। यह अनुभव करो और मुक्त हो। यह अनुभव करो और तुम विश्व के स्वामी हो। यह अनुभव करो और तुम देखोगे कि तुम्हारे उद्यम के सब मामले, तुम्हारे सब व्यापार आप से आप, अत्यन्त वांछनीय रूप में तुम्हारे सामने आ खड़े होंगे। तुम देखोगे कि सफलता को तुम्हें खोजना पड़ेगा, और तुम सफलता को ढूंढ़ते न फिरोगे। तुम देखोगे कि भीतर के परमेश्वर पर यह विश्वास, भीतर के परमेश्वर की यह अनुभूति, सारे विश्व को तुम्हारा क्षुद्र दास बना देगी, इस संसार की प्रत्येक वस्तु को तुम्हारा अधीन बना देगी। तुम देखोगे कि सफलता और अभ्युदय तुम्हें ढूंढ़ेंगे, और तुम्हें उनको न ढूंढ़ना पड़ेगा। "यदि पहाड़ मोहम्मद के पास नहीं आता तो मोहम्मद पहाड़ के पास जायगा।" जिस क्षण तुम इन सांसारिक पदार्थों में सुख ढूँढ़ना छोड़ दोगे और स्वाधीन हो जाओगे, अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करोगे, उसी क्षण तुम्हें मोहम्मद के पास न जाना पड़ेगा, मोहम्मद तुम्हारे पास आवेगा। यही दैवीविधान है। यही रहस्य है, यही गुह्य भेद संसार का शासन कर रहा है। यही सिद्धान्त तुम स्वयं हो। यह अनुभव करो, अपनी स्त्री और बच्चों को यह अनुभव कराओ। खुद स्वाधीन हो और उन्हें स्वाधीन बनाओ। इस तरह तुम साक्षात् अंधकूप या कारागार को बैकुण्ठ बनादोगे, तुम अपने घरों में अपने लिए स्वर्ग बनाओगे, तुम अपने अत्यन्त झगड़ालू घरों को सुखी घर बना सकते हो। दूसरा कोई उपाय नहीं है! इस अनिवार्य निर्दयी क़ानून से तुम बच नहीं सकते। यही एक रास्ता है, यही एक मात्र विल है; यही एक परताली (Master Key)

है जो संसार के सब खज़ानों को खोल देती है। यदि तुम अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करो, तो तुम मुक्त हो। यह अनुभव करने में दूसरों की सहायता करो।

ॐ। ॐ।

गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव।

(ता० १ फरवरी १६०३, रविवार, सन्ध्या-समय)

"क्या कोई विवाहित मनुष्य (गृहस्थी) आत्म साक्षातकार की अभिलाषा कर सकता है?"* यह प्रश्न कुछ समय पहिले "राम" से पूछा गया था और उसका पूर्ण उत्तर भी उस समय दिया गया था।

राम आज उस विषय को नहीं छेड़ेगा, किन्तु उसी के समान अन्य विषय पर बोलेगा।

उस प्रश्न के उत्तर में कामनाओं के स्वरूप का उदाहरण दिया गया था। अर्थात् "कामना क्या वस्तु है; और मनोरथ मनुष्य के स्वभाव पर क्या प्रभाव डालते हैं? कामनाओं की पूर्ति से क्योंकर सुख और अपूर्ति से क्यों कर दुःख होता है?" आदि प्रश्नों का विचार किया गया था। यह प्रश्न बहुत बड़ा और जटिल है और इस पर "राम" ने बहुत गंभीरता पुर्वक विचार भी किया है। राम के अनुसंधानों का फल "मनोवेग शास्त्र (Dynamics of mind)† नामी ग्रन्थ में प्रस्तुत किया जावेगा।

"क्या अपने पुत्र, कलत्र, स्नेही सम्बन्धियों में रहने वाला गृहस्थ वा दूसरे शब्दों में एक साधारण सांसारिक मनुष्य

*यह विषय गतभाग १५ के 'निश्चल चित्त' नामी व्याख्यान में दर्ज है।

†मनोवेग शास्त्र नाम का ग्रन्थ 'राम' ने आरंभ ही किया था कि शरीर ने साथ न दिया। इस नाम तले कुछ नोट दो चार पृष्ट पर लिखने के बाद 'राम' ब्रह्मलीन हो गए। अतएव अब इस ग्रंथ का केवल नाम तो रह गया आकार बनने नहीं पाया।

तत्त्व (आत्मा) का साक्षातकार कर सकता है"? यही प्रश्न है।

हम इस प्रश्न के एक अंग पर विचार करेंगे। वेदान्त केवल इतना पूछता है "क्या तलवार तुम्हारे शत्रुओं का नाश कर सकती है ?"

यदि इस प्रश्न के उत्तर में 'हां' कहा जासकता है, तो "क्या कोई सांसारिक गृहस्थ तत्व का साक्षातकार कर सकता है ?" इस प्रश्न के उत्तर में भी 'हां' कहा जासकता है। यह सब केवल उस तलवार अथवा गृहस्थ-बन्धन के उपयोग पर निर्भर है। उसी एक तलवार से हम अपना नाश कर-सकते हैं, और उसी से हम बाहरी आक्रमणों से अपने को बचा सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपने गृहस्थ के बन्धनों वा सम्बन्धों के दुरुपयोग से अपना विनाश कर सकता है, वा अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है, और अपने में साक्षात्कार कर सकता है। अतः यह प्रश्न भी उसी प्रकार हल होता है।

हमारा टहलना, घूमना, स्वास्थ सम्बन्धी हमारा दैनिक नित्य-कर्म हमारे सुख और आनन्द का कारण होसकते हैं—वे हमारे लाभ तथा सुधार का कारण हो सकते हैं, यदि उचित रीति से हम उन्हें करें। परन्तु उन के दुरुपयोग से वही सैर-सपाटे क्लेश अशान्ति एवं व्याधि का कारण बन सकते हैं।

इसी तरह हमारे परिवारिक सम्बन्ध, हमें उन्नत कर सकते हैं वा हमारी रक्षा कर सकते हैं, और हमारा समूल नाश भी कर सकते हैं।

एक बड़ा सज्जन पुरुष था जिसके पास एक बहुत लुच्चा और बदमाश नौकर था। वह प्रत्येक काम को उल्टा ही किया करता था। अपने मालिक की आज्ञाओं के पालन करने का

उस का ढंग ही निराला था। वस्तुतः उस के कार्य्य करने की शैली ऐसी थी कि गंभीर से गंभीर मनुष्य भी उससे झल्ला उठता। पर वह धर्मात्मा मालिक उस नौकर पर कभी क्रुद्ध न होता, उल्टे वह उस दुष्ट के साथ अति प्रेम का बर्ताव करता। एक समय उसके एक अतिथि ने उस नौकर के विरुद्ध बहुत सी शिकायत की। वह उसके कामों से बहुत खिन्न और क्रुद्ध हुआ था, और उस के मालिक को उसे निकाल देने को कहा। पर मालिक ने उत्तर दिया-"आपकी सलाह अत्युत्तम है, और आपने शुभेच्छा-पूर्वक यह सम्मति दी है। मैं जानता हूं कि आप मेरे शुभ-चिन्तक हैं और मेरे कार्य्य की वृद्धि चाहते हैं जिससे मुझे यह सम्मति देते हैं। पर मैं इस बात को अधिक जानता हूं। मैं जानता हूं कि मेरा काम काज खराब होरहा है। इस से मेरे व्यापार को हानि पहुँच रही है। किन्तु मैं उसे इसी लिये रखता हूं कि वह इतना अनाज्ञाकारी है। यह उसका दुष्ट आचरण और खराब स्वभाव है, जिससे वह मुझे इतना प्रिय हो रहा है। वह पापी, दुष्ट और नमकहराम है, इसी से मैं उसे अधिक प्यार करता हूं" उसका ऐसा कहना बड़ा ही आश्चर्य्य-जनक था।

वह मालिक बोला "दुनिया में जितने लोगों से मेरा वास्ता पड़ा है उन सब में से एक यह ही मनुष्य ऐसा है जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है, जो निन्दामय (अप्रिय-वादी), अकीर्तिकर और हानिकर काम करता है; और जितनों से मेरा वास्ता पड़ा वे सब के सब इतने कोमल स्वभाव, इतने अच्छे और इतने प्रेमी हैं कि वह मुझे रुष्ट करने का कभी साहस नहीं करते। इस लिये यह नौकर असाधारण है।

यह एक तरह का मुगदल (Dumb-bell) है जो मेरी आध्यात्मिक शिक्षा का उत्तम साधन है। जिस प्रकार बहुत से लोग अपना शारीरिक बल बढ़ाने के लिए मुगदल आदि फेरते हैं उसी प्रकार यह नौकर मेरे आत्मिक बल की वृद्धि निमित्त मुगदल का काम देता है। और इससे मेरा आध्यात्मिक शरीर पुष्टि पाता है। इस नौकर द्वारा मुझे आध्यात्मिक बल प्राप्त होता है। इस लिए इस नौकर के साथ मुझे एक प्रकार की कुश्ती लड़नी पडती है जिस से मुझे शक्ति प्राप्त होती है।"

अतः राम इस तथ्य को तुम्हारे सामने उपस्थित करता है, और इसकी ओर तुम्हारा ध्यान इस लिए दिलाता है कि यदि तुम्हें गृहस्थ-बन्धन तुम्हारी उन्नति के मार्ग में विघ्न रूप अथवा अड़चिल पत्थर मालूम पड़ें तो भी तुम्हें खिन्न होने की आवश्यकता नहीं। ठीक उसी धर्मात्मा मालिक का अनुकरण करो। भेद भाव और कठिनाइयों को शक्ति और बल का नवीन स्रोत बनालो।

ग्रीस देश में सुक़रात ((Socrates) नाम का एक महान तत्त्ववेता हुआ है। उस की स्त्री दुनिया भर में बड़ी कलह-कारिणी थी। एक दिन सुक़रात बड़ी गंभीर वृति से किसी तत्त्व का चिन्तन कर रहा था। उसी समय उसकी स्त्री अपनी आदत के अनुसार उसके पास आई और अपशब्द बोली। उसने सुक़रात को लानतान की और उसका अपमान किया, नाना नामों स उसे पुकारा। उसकी वृत्ति अपने ओर खींचने का आग्रह किया। अपनी टहल उस से चाही और "यह कर" "वह कर" की आज्ञा हांकने लगी। पर सुक़रात अपने तत्त्व-चिन्तन में लगा रहा। किसी भी समस्या को तब तक नहीं छोड़ता था जब तक वह हल न

होले। यही उसकी परिपाटी थी।

स्त्री ने गरज गरज कर तूफ़ान मचा दिया, परन्तु सुक़रात ने तब भी न सुना, तब ग़ुस्से में भर कर स्त्री ने गन्दे पानी से भरा बर्तन बिचारेके सर पर उलट दिया। क्या सुक़रात उस समय भी क्षुब्ध वा क्रुद्ध हुआ? किञ्चित मात्र भी नहीं। वह मुसकराया और हँसते हुए बोला, "आज यह समस्या (लोकोक्ति) ठीक सिद्ध हुई कि प्रायः (मेघ) जब गरजता है, तब बरसता है।"

पहिले जब कभी वह गरजी, वर्षा नहीं हुई। किन्तु आज जब उसने गरज गरज कर तूफान मचाया तो पानी भी बरस पड़ा। उपरोक्त व्यंग वचन के बाद सुक़रात फिर अपने तत्त्व चिन्तन में मग्न हो गया।

इस से स्पष्ट है कि अपने स्वभाव को वश में करने की शक्ति से मनुष्य को कभी निराशा न होना चाहिये। यदि एक मनुष्य (सुक़रात) ने अपने स्वभाव को इतना वश में कर लिया, तो फिर सब कोई कर सकता है। आज भी क्या दुनिया में ऐसे लोग नहीं हैं कि जिनकी आदत वा स्वभाव उनके आधीन हों? अवश्य ही ऐसे मनुष्य हैं, और उद्योग से तुम भी ऐसा कर सकते हो।

यदि तुम चाहो तो तत्त्व-साक्षात्कार वा परमात्मा से एकता अथवा सब से अभेदता, या समस्त विश्व के साथ तुम्हारी समता एवं इस आत्म-साक्षातकार का मार्ग तुम्हारे गृहस्थ सम्बन्ध द्वारा विशेष सुगम बनाया जा सकता है।

जगत के प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य तथा लक्ष्य और आध्यात्मिक विकास का परिणाम यही है कि प्रत्येक प्राणी अपने अन्तरात्मा का अनुभव करे, और यह परिच्छिन्न आत्मा जब तक ईश्वर के साथ अभेदता वा परमात्मा से एकता

अनुभव न करले, तब तक बोध प्रतिबोध वा परिचय पर परिचय का उपार्जन करता रहे। नहीं तो तलवार की धार पर तो इसका अनुभव करना ही होगा।

यही उद्देश्य है। यदि साधारण मनुष्य को ग्रहस्थ के सम्बन्ध विघ्नरूप जान पडते हैं, तो (इसके विपरीत) "राम" कहता है कि पुत्र और कलत्र तुम्हारे सहायक बन सकते हैं।

पृथ्वी सूर्य्य के चारों ओर घूमती है। पृथ्वी को अवश्य परिक्रमा करना है। चन्द्रमा पृथ्वी से चिमटना चाहता है। अब बताओ, पृथ्वी बिचारी क्या करे? चन्द्रमा और उपग्रहों को पृथ्वी साथ लेकर सूर्य्य की प्रदक्षिणा कर सकती है।

इसी प्रकार से, हे पुरुषो वा स्त्रियो! यदि तुमने सूर्य्यों के सूर्य्य की ओर खिंच जाना निश्चय किया है, तो जिस प्रकार पृथ्वी चन्द्रमा को साथ रखती है, उसी प्रकार तुम भी अपने साथी को साथ रक्खो, और तब अपने साथी के साथ सूर्य्यों के सूर्य्य तथा प्रकाशों के प्रकाश के इर्द गिर्द चन्द्रमावत् परिक्रमा करते जाओ। ऐसा करने से अकेले अपने इस तुच्छ शरीर को ही उस 'सूर्य्यों के सूर्य्य' की प्रभा, कान्ति एवं शोभा का भागी बनाने की जगह तुम अपने साथ अपने साथी (पत्नी इत्यादि) को भी उसी सूर्य्य की प्रभा, कान्ति और शोभा का उपभोग करा सकते हो। इस प्रकार एक ही व्यक्ति की जगह तुम अनेक आत्माओं को अपने साथ खींच लेजा सकते हो। केवल एक शरीर द्वारा काम करने के बदले तुम अनेक शरीरों द्वारा कार्य्य कर सकते हो। ये सभी तुम्हारे शरीर हैं। जिस प्रकार एक शरीर तुम्हारा है, उसी प्रकार यह सब शरीर ईश्वर के हो सकते हैं, और उसका गुणानुवाद कर सकते हैं। जैसे जब कोई मनुष्य किसी स्थान पर जाता है और अपने साथ

एक ही देह (शरीर) लेजाता है, तो वह अपने हाथ, पैर, आँख, कान, नाक आदि को पीछे छोड़ नहीं जाता, यह सब उसके साथ ही जाते हैं; उसी प्रकार वेदान्त कहता है कि जब तुम स्वर्गीय ज्ञान प्राप्त करने जाते हो, जब तुम सत्य का अनुभव करने जाते हो, तब तुम अपने आधे शरीर मात्र को स्वर्गीय ज्ञान की ओर लेजाने के स्थान पर सम्पूर्ण शरीर को अपने साथ लेजा सकते हो, तुम अपने पुत्र कलत्र को, मानो अपने दिल दिमाग़ और हाथ पैरों को, साथ लेजा सक़ते हो।

इस तरह परमात्मा के साथ अभेदता और एकता अनुभव करने के पूर्व तुम अपनी स्त्री और पुत्र के साथ एकता अनुभव करो। जिस मनुष्य ने अपनी अर्धाङ्गी और पुत्र कलत्र के साथ एकता अनुभव नहीं की, वह सब के साथ अपनी एकता का अनुभव कैसे कर सकता है ?

वेदान्त की दृष्टि में स्वाभाविक मार्ग तो यही है कि जिस के साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो, उसी के साथ एकता अनुभव करना आरंभ करो। तुम्हारे जो प्रियतम हों, उन्हीं में तुम अपने को लीन करदो। अपने हित को उनके हित में लीन करदो। सब शरीरों को मिला कर एक करदो। सबों को मिलकर एक धारा प्रवाह बन जाने दो, और फिर परिचय पर परिचय प्राप्त करते जाओ। तदनन्तर दूसरे परिवारों को लो, और क्रमशः उन्नति करते हुए सब परिवारों को अपना शरीर बना लो। जब तुम सब व्यक्तियों को अपना शरीर समझ लोगे, तब तुम परमात्मा के साथ एकता अनुभव कर सकोगे, तब तुम प्रत्येक को अपने साथ लेजा सकोगे।

ईसाइयों की धर्म पुस्तक (बाइबिल) में शिष्य सेंटजोह्न (Saint John) के सम्बन्ध में हम पढ़ते हैं कि उससे

हज़रत ईसा प्रेम करते थे। ईसा समस्त संसार से प्रेम करता था। "शिष्य से ईसा ने प्रेम किया" इस कथन को थोड़ा बदल देने से यों हो जाता है कि शिष्य ने ईसा से प्रेम किया। इससे ईसाई सिद्धान्त (ईसा द्वारा मुक्ति) का मूल सूत्र मिल जाता है।

"आघात प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी होते है।" (Action and reaction are equal and opposite)। यदि ईसा अपने शिष्य से प्रेम करता था, तो शिष्य ने भी ईसा से अवश्य प्रेम किया होगा। जोह्न को यदि ईसा के प्रति भक्ति न होती तो "आघात और प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी" होने वाले अनिवार्य्य नियम के अनुसार ईसा सदा उसे प्रेम नहीं कर सकता था। ईसा तत्वदर्शी था। वह जगत-पिता और 'सर्व'* से अभेद था। वह एक ऐसा मनुष्य था जिसने अपने मन बुद्धि और अहंकार को परमात्मा में लीन कर दिया था।

जोह्न, पीटर, पाल अथवा अन्य कोई शिष्य ईसा के साथ अपना सम्बन्ध जोड़, ईसा की भक्ति कर (क्योंकि भक्ति और प्रेम द्वारा ही सम्बन्ध होता है) एवं उसके साथ एकता का अनुभव करके स्वभावतः ही ईसा का ईशत्व भोगता है।

कल्पना करो, कि हमारे पास एक पदार्थ है, जिसमें बिजली भरी है। यदि इस विद्युन्मय पदार्थ के साथ कोई दूसरा पदार्थ लगा दिया जाय, तो इस विद्युन्मय (electrified) पदार्थ से विद्युत-हीन पदार्थ में सहज ही बिजली चली जायगी।

इसी प्रकार उस समय के शिष्यों को ईसा के द्वारा ईसा

*सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि 'सर्वः'। [गीता सु० ११-४०]

की प्रकृति प्राप्त होना अवश्य है। और इस प्रकार यदि ईसा अपना उद्धार करता है, तो उसकी भक्ति द्वारा दूसरे का उद्धार अवश्य होता है।

वेदान्त के अनुसार तब तक कोई प्राणी ईश्वरानुभव नहीं कर सकता, जब तक उसका अपना आप पूर्णतया विश्व-प्रेम में परिणित न हो, और जब तक समस्त विश्व को ही वह अपना शरीर न समझ ले।

तुम को याद होगा कि एक दिन "राम" ने अपने व्याख्यान में दो प्रकार के अध्यासों का वर्णन किया था—एक स्वरूपाध्यास और दूसरा संसर्गाध्यास।

स्वरूपाध्यास के कारण नाना व्यक्तित्व एवं उन में परस्पर भेदभाव की कल्पना उत्पन्न हो आती है, और इसी से वह अन्धा-पन व अन्धकार उत्पन्न हो आता है कि जिससे मनुष्य को प्रत्येक में ईश्वर देखना नहीं मिलता। यही उस मानसिक व्याधि का हेतु है जो आपको विश्व के सब पदार्थों में एकत्व का अनुभव करने नहीं देती। संसर्गाध्यास वाह्य-विषमता है, नाम रूप का भ्रम है।

इस प्रकार सांसारिक मनुष्य में इन दोनों प्रकार के अध्यासों को दूर करना होगा। सबसे पहिले तो समस्त वस्तुओं (व्यक्तियों) में एकता का अनुभव करना आवश्यक है। जिस मनुष्य को इन दोनों प्रकार के अध्यासों को जीतना व दूर करना होता है, उसे पहिले अपने को ही समस्त विश्व के प्रत्येक पदार्थ का आत्मा अनुभव करना होता है। वह अपनी आत्मा को ही जगत् के सारे मनुष्यवर्ग, सारे वनस्पतिवर्ग, समस्त वृक्ष, सरिता, कीट, पतंग, आदि की आत्मा समझता और अनुभव करता है। अनुभव की यह एक अवस्था है। ऐसे मनुष्य को आरंभिक अवस्था में अपने पुत्र कलत्र के साथ

एकता अनुभव करने से सहायता मिलती है। जब वह सारे संसार के साथ अपनी एकता (अभेदता) अनुभव करता है, तो यह अनुभव की पहिली अवस्था है। दूसरी अवस्था वह है जब कि सभी बाह्य नाम रूप और आकार अन्तर्धान हो जाते हैं, जहां यह माया समूल नष्ट होजाती है। और तब सारे संसार का, जो शरीर रूप था, बाध किया जाता है, और वह आत्मा में विलीन हो जाता है।

आरंभ में हम को समस्त विश्व अपना शरीर अनुभव करना होता है। तब जिस विश्व को अपना शरीर अनुभव किया होता है, उस विश्व का बाध किया जाता है, अर्थात् वह रद्द किया जाता है, और उस सत्य स्वरूप आत्मा में कि जो मेरा अपना आप है वह विलीन हो जाता है।

आत्मानुभवी मनुष्य पहिले समस्त जगत् बनता है। और तब जगत् का उद्धार करता है; इस प्रकार वह समस्त विश्व का उद्धारक (Saviour) बन जाता है। अतः तुम अपने उद्धारक आप हो, ऐसा वेदान्त का तात्पर्य है।

"ईसा द्वारा हम ईश्वरानुभव करते हैं" इस कथन का अर्थ यह है कि सर्व जगदात्मैक दृष्टि की जो अवस्था है, उस अवस्था द्वारा ही, उस 'ईसा' की अवस्था को पार करने पर ही तुम वर्णनातीत, अक्षर ब्रह्म में लीन हो सकते वा गोता लगा सकते हो। अतः जो शाश्वत है, जिस के वर्णन में वाचा कुण्ठित होती है, जो वाणी मात्र के परे है, उस तत्व के अनुभव के पूर्व, उस सत्यस्वरूप को प्राप्त करने से पहले—जहां नाम, रूप, भेद भाव का अस्तित्व नहीं, उस परमात्म-अवस्था में पहुंचने से पहले, तुमको वह अवस्था प्राप्त करना होगी, जहां अपना सत्य स्वरूप ही तुम को सब नाम रूपों में ओत प्रोत और व्याप्त दीखता है;

यही अवस्था 'ईसा' की अवस्था है। इस प्रकार ईसा की अवस्था को लांघ कर तुम ईश्वर तक पहुंच सकते हो; और यह अवस्था प्रत्येक के साथ क्रमशः ऐक्यबुद्धि करने से प्राप्त होती है। जिन पाठों के द्वारा इस की व्यावहारिक शिक्षा मिलती है, उन का आरंभ तब होता है, जब तुम अपनी माता पिता, पत्नी बालकों और स्नेहियों के साथ अपनी एकता अनुभव करने लगते हो, और फिर धीरे २ समस्त देश के साथ एवं समस्त जगत् तथा विश्व के साथ उत्तरोत्तर एकता अनुभव करते हो। यह बहुत कठिन काम ज्ञात होता है, पर वास्तव में यह बहुत कठिन नहीं है। आरंभ करना कठिन है, पर कुछ ही काल बाद प्रगति (progress) तीव्र होजाती है। जब एक बार कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ अपनी अभेदता अनुभव कर लेता है, तथा दूसरे में मानो विलीन होजाता है, तब वह प्रत्येक के साथ अपनी एकता अनुभव करने लगता है। अनुभव से यहां स्पष्ट होता है कि प्रकृति के अटल नियमानुसार जगत में जो कुछ प्रीति है, वह हम को बलात्कार ऐसी स्थिति में लेजाती है कि जहां हमारा प्रेम-पात्र बाह्य जगत का विषय नहीं रहता, जहां हमारा प्रेम बाह्य रंग रूप आकृति वा लिंग चिन्हों पर नहीं रहता, वरन् जहां प्रेम अधिकाधिक अन्तरात्मा, सर्वाधार सत्ता पर ही होता है।

प्रत्येक मनुष्य इस कथन की सच्चाई के विषय में निज अनुभव से कुछ न कुछ कह सकता है। जैसे जैसे हम वयोवृद्ध होते जाते हैं, वैसे वैसे हम देखते हैं कि हमारा प्रेम-पात्र अधिकाधिक विशुद्ध होता जाता है—हमारी प्रीति का केन्द्र विशेष सरल, विशेष इन्द्रियातीत और अधिक सूक्ष्म होता जाता है।

क्या जगत के सब मनुष्यों को अपने जीवन में इस रहस्य का थोड़ा बहुत अनुभव नहीं हुआ है? एक समय आता है कि जब हम अपने प्रेम-पात्र के मुँह के काट (वज़ा क़ता) वा चेहरे के भद्दापन पर या त्वचा की झुर्रियों पर, तथा बाह्य चिन्हों व विकारों पर रंचक मात्र भी ध्यान नहीं देते। तब हम केवल अन्तरात्मा को, भीतरी प्रीति को, अन्तः हृदय को, वा भीतरी पवित्रता को तथा भीतरी प्रेम-पात्र को प्यार करते हैं! क्या इसको सबों ने देखा व अनुभव नहीं किया हैं? क्या सब ने यह नहीं देखा है कि प्रायः हम अपने प्रेम-पात्र के बाह्य दोषों, शारीरिक विकारों को देखते तक नहीं? हम केवल सौन्दर्य्य देखते हैं, कुरूपता की ओर से अन्धे हुए होते हैं। यदि उस प्रेम में, अथवा उस व्यक्ति में वा हमारे उस प्रेम-पात्र में, वास्तविक प्रीति होती है, तो हमारा हृदय द्रवित हो जाता है-उस की ओर आकर्षित हो जाता है। तदनन्तर ऐसा समय आता है जब हमारे प्रेम का केन्द्र,इन बाह्य एवं स्थूल रंग रूप, आकार और चिन्ह से अधिक सूक्ष्म अर्थात् दूर और विशेष विशुद्ध होता है। बस यहां पहुंचते ही हम एक सीढी ऊपर आ जाते हैं। पहिले से ऊंचे उठ आते हैं। यहां तुम बाह्य चिन्हों और स्थूल शरीरों से उठ कर सूक्ष्म मनोवृत्तियों में पहुँच जाते हो।

अब इस से परे दूसरी और उच्चतर स्थिति है, जहां हमारे प्रेम का केन्द्र भीतरी भाव, मनोवृति वा चित्त (अन्तः करण) की शुद्धि, अथवा अपने प्रेम-पात्र के दर्शन नहीं, बल्कि वहां हम परमात्मा या अन्तर्यामी को प्यार करते है, तथा अपने शुद्ध स्वरूप अन्तरामा का दर्शन करते हैं। बस एक बार जिस समय यह स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिस समय जगत के सारे पदार्थ चित्र वा चिह्न मात्र बन जाते हैं; जिस समय

हम पदार्थों को पदार्थ भाव से नहीं देखते, वल्कि उनके पीछे उनके आधार रूप निर्विकार आत्मा को देखते हैं; जिस समय हमारी दृष्टि इस वा उस पदार्थ पर पात होते ही उसमें हमारा हृदय-नेत्र शुद्ध स्वरूप परमात्मा को देखता है; जिस समय ऐसी स्थिति प्राप्त होती है; तब समस्त विश्व के साथ एकता, अभेदता अनुभव करना मनुष्य के लिए सुगम हो जाता है। यही 'क्राइस्ट की स्थिति' अथवा ईसा-दशा है। इस क्राइस्ट की अवस्था में कुछ काल रहने के बाद दूसरी इससे भी उच्चतर स्थिति आती है। तब तुम परमात्मा में पूर्णतया लीन हो जाते हो। जब हम इस तरह समाधि, पूर्णतया एकता, निमग्नता, वा लय की अवस्था में होते हैं, तो वह परमात्म अवस्था है। इस को हम निर्वाण या समाधि अवस्था कहते हैं, ऐसी अवस्था में अन्तःकरण में न कोई स्फुरण होता है, न क्षोभ और न विरोध।

उस स्थिति में क्रमशः पहुंचने के लिए हम अपने सांसारिक कुटुम्बियों तथा संबन्धियों से किस प्रकार सहायता वा साहाय्य प्राप्त कर सकते हैं?

भारतवर्ष मे ऐसे लोग हैं जो रोमनकैथोलिकों की तरह ईश्वरोपासना करते हैं, जो ईश्वर-पूजन प्रतिमाओं द्वारा करते हैं। ईश्वर, राम, वा कृष्ण की प्रतिमा को (अधिकतर) पूजते हैं। राम और कृष्ण भारत के ईसा मसीह हैं।

भारतवर्ष में एक बार एक वृद्धा स्त्री ने एक महात्मा के पास जाकर पूछा-"यदि उचित हो, तो मैं अपने गृहस्थ और कुटुम्ब को त्याग कर कृष्ण की जन्म भूमि वृन्दावन में निवास करूँ?"। अपने कौटुम्बिक बन्धनों को छोड़ और प्रत्येक से अपना सम्बन्ध तोड़कर उस परम रमणीय नगर-हिन्दुस्तान के जरूसलम--वृन्दावन का सेवन करना, क्या उसके लिए

उचित था ?

उस स्त्री के साथ उसका शिशु पौत्र था। महात्मा ने उत्तर दिया "ज़रा ध्यान दो, ज़रा विचारो तो, इस छोटे शिशु के नेत्रों में से तुम्हारी ओर कौन देख रहा है ? इस बालक के शरीर में कौनसी शक्ति, कौनसी चेतनता, तथा कौनसी प्रभुता है जो इसके रोम रोम से तुम्हारी ओर देख रही है ?" स्त्री ने उत्तर दिया 'यह अवश्य ईश्वर ही होगा। इस प्यारे छोटे से शिशु के चित्त में लोभ या दुष्टता का लेश मात्र भी नहीं है। यह प्यारा शिशु बिल्कुल निष्पाप और पवित्र है। जब यह रोता है, तो इसके रुदन में परमात्मा का स्वर होता है, और कुछ नहीं।" फिर महात्मा ने कहा--"जब तुम वृन्दावन जाओगी, तब भारत के उस जेरूसलम में तुम्हें कृष्ण की एक प्रतिमा से लग्न लगानी होगी, भगवान् की उस प्रतिमा में तुम्हें भगवान् को पूजना होगा। जिस प्रतिमा का तुम्हें भारत के जेरूसलम रूपी वृन्दावन में दर्शन होगा, क्या इस बालक की देह उतनी ही अच्छी कृष्ण की मूर्ति नहीं है ?" वृद्धा कुछ चकित होगई, और विचार तथा मनन करने के बाद वह इस परिणाम पर पहुंची कि "बिना किसी हानि के उस बालक को कृष्ण का अवतार मान कर मैं उसके शरीर द्वारा ईश्वर की पूजा कर सकती हूं, क्योंकि ईश्वर ही वह है, जो उस बालक के नेत्रों में से देखता है, ईश्वर ही वह है जो उस बालक को शक्ति वा बल देता है, ईश्वर ही वह है जो बालक के कान में से सुनता है, ईश्वर ही वह है जो बालक के केशों को बढ़ाता है, ईश्वर ही वह है जो उस बालक के शरीर के प्रत्येक रोम में से व्यापार करता है; यह बालक स्वयं प्रभु है"।

महात्मा के उपदेशानुसार वृद्धा को यह बालक

अपना पौत्र नहीं समझना चाहिये, किसी रीति से अपना सम्बन्धी नहीं बल्कि ईश्वर समझना चाहिये। और इस प्रकार उसके साथ सब पारिवारिक तथा सांसारिक सम्बन्ध तोड़ डालने चाहियें, केवल ईश्वरीय वा ईश्वरत्व का सम्बन्ध बनाए रखना चाहिये। यही त्याग की विधि है।

त्याग का अर्थ वैराग्य वा काषाय नहीं है। त्याग का अर्थ प्रत्येक वस्तु को पवित्र बनाना है। बालक-त्याग का अर्थ बालक वा पौत्र के साथ सभी सम्बन्धों का तोड़ना नहीं बल्कि उसे ईश्वर समझना है। प्रत्येक वस्तु में परमात्म-दर्शन करना ही वेदान्त के अनुसार त्याग है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥
(ईशावास्योपषिद् १)

भवार्थः—जो कुछ दीखे जगत में, सब ईश्वर से ढाँप।
करो चैन इस त्याग से, धन-लालच से काँप ॥ १ ॥

वेदान्त तुम को पति, पत्नि, तथा अन्य सम्बन्धियों को त्यागने को कहता है। वेदान्त कहता है कि पत्नी से पत्नी का नाता तोड़ दो, उससे पत्नी भाव त्याग दो, किन्तु उस में अपना शुद्ध आत्मा वा परमात्मा देखो। शत्रुओं को शत्रु रूप से त्याग दो, उन में ईश्वर देखो; मित्रों को मित्र रूप से त्याग दो, और उन में ईश्वरत्व वा ब्रह्मत्व का अनुभव करो।

स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व के सभी बन्धनों का त्याग करो। प्रत्येक प्राणी व पदार्थ में ईश्वरत्व का अनुभव करो, सब में विभु का दर्शन करो। प्रत्येक हिन्दु दम्पति (स्त्री-पुरुष) को धर्म-शास्त्र यों ही रहने की आज्ञा देता है। धर्म्म-शास्त्र के नियमानुसार, जिनको "राम" अपने गृहस्थ-आश्रम में व्यवहार में लाता था, पत्नी नित्य प्रातःकाल सबेरे जागती

थी। और जब "राम" ध्यान में लीन होता, जब "राम" परमात्मा का अनुभव व साक्षात्कार करता, जब वह परमात्मा में निमग्न होता, वा जब वह शरीर और मन के परे होता, जब वह मधुर अमृत्व—सुधा का पान करता होता, तव पत्नी निकट आती, और जिस प्रकार रोमन कैथोलिक अपनी मूर्तियों की पूजा करते हैं, उसी प्रकार देह विस्मरण कर वह पत्नी "राम" पर दृष्टि डालती। यहां जैसे "राम" अपने शरीर को भूल जाता है, इस भौतिकता के परे जा पहुंचता है, और ईश्वर में लीन हो जाता है, वैसे ही पत्नी "राम" में ईश्वर और उसकी विभूति का दर्शन करती, और कुछ नहीं। इस प्रकार "राम" के शरीर से कुछ दूर बैठकर वह "राम" के ललाट पर अपनी दृष्टि जमाती। अधिक उन्नत न होने के कारण वह "राम" के शरीर का ध्यान करती, और इस प्रकार 'ॐ' का उच्चारण करती हुई अपने ध्यान में "राम" की प्रतिमा को ऐसे ज़ोर से रखती कि अन्य सब विचार निर्मूल होजाते, और अपनी देह की सुध भी नितान्त वह भूल जाती। वह अपने को "राम" के शरीर में निमग्न वा परिणत हुई अनुभव करती, पर उसके आत्मा के विषय क्या? उसे स्पष्ट ऐसा प्रतीत और अनुभव होता कि उस का आत्मा "राम" का आत्मा है। वह यही अनुभव करती कि "राम" समाधिस्थ और ब्रह्माकार वृत्ति में लीन नहीं वरन् मैं ही ब्रह्माकार वृत्ति में निमग्न हूं। "राम" का ध्यान उसका ध्यान होता, और वह समस्त विश्व के साथ तादात्म्य अनुभव करती; उस समय उसे ऐसा प्रतीत और अनुभव होता कि मैं ही सारे संसार की सार और आत्मा हूं। इस रीति से मानो वह "राम" की सहायक और "राम" उस का सहायक होता। (अब यदि आप पूछें कि) स्त्री किस प्रकार

सहायक हो सकती है ? जब स्त्री अपने पति को ईश्वर समझती है, जब ऐसे विचार और ऐसे विचारों के प्रवाह उसके पति को ईश्वर बनाने लगते हैं, तब क्या उसकी मानसिक शक्ति और सामर्थ्य जो इस ओर प्रवाहित हैं उस के पति को साक्षात् ईश्वर नहीं बनादेंगे ? क्या इस रीति से पतिको सहायता न मिलेगी कि वह अपने शुद्ध आत्मा को परमात्मा अनुभव कर सके ? अवश्य मिलेगी।

सभी ईसाई वैज्ञानिक लोग अपने अनुभव से जानते हैं कि जैसा हम चाहें, वैसा अनुभव हम किसी भी मनुष्य को करा सकते हैं।

कल्पना करो कि यहां एक स्त्री (पत्नी) है, जो सदा ऐसे दिव्य विचार भेजती रहती है, जो सदा ऐसा विचार करती है कि "मेरा पति परमेश्वर है।" उसके यह विचार, आत्म-साक्षात्कार करने में पति के सहायक होते हैं। इसी प्रकार जब पति परमात्मा के साथ अपनी एकता अनुभव कर लेता है, तो पत्नी को सहायता मिलती है। अहा ! कैसा आध्यात्मिक विवाह है ! अहा ! कैसा उत्तम मिलाप है !! दोनों परस्पर सहायता करते और सहायता पाते हैं। ऐसे आध्यात्मिक मिलाप पर निबंधित विवाह और प्रीति जगत् में अत्यंत सुखमय होते हैं। मुख के वर्ण पर, मुख रेखा पर, आकार पर वा शारीरिक लावण्यता पर आसक्ति के कारण से होने वाले वैवाहिक सम्बन्ध अन्त में बड़े हानिकारक और बड़े दुःखभाज होते हैं। ऐसे विवाह हृदय-वेदना, शोक-चिन्ता और अन्ततः दुःख उतपन्न करते हैं।

जिस विवाह में शारीरिक सुन्दरता वा मुँह के रूप रंग की कोई गिनती नहीं, अपितु जो अन्तरात्मा को ही देखता

है, और जो केवल आध्यात्मिक मिलाप जन्य है, वही विवाह निरापद (आपद्-भय मुक्त) और चिर-स्थाई होता है। केवल ऐसे ही विवाह सुख एवं आनन्द देने वाले हो सकते हैं।

एक बार एक स्त्री ने महात्मा के पास जाकर पूछाः--"महाराज"! कुछ मास हुए मेरा पति मर गया है। बतलाइये उसके उद्धार के लिए मैं क्या करूं?" एक दूसरे सज्जन ने आकर बोला कि "मेरा इकलौता पुत्र मर गया है। उसका वियोग असह्य है; और इसी लिए मैं आत्म-घात करने जा रहा हूं।" तीसरे ने कहा-"मेरी स्त्री मुझ से सदा के लिए बिछुड़ गई है, अब मैं जीना व्यर्थ समझता हूं।" महात्मा ने इन सब को क्या उत्तर दिया?

वह स्त्री बहुत ही हताश थी और अपने पति का उद्धार करने के लिए भी अतीव उत्सुक थी। (अतः)महात्मा ने कहा, "तुम अपने पति का उद्धार कर सकती हो, तुम्हें हताश होने की आवश्यकता नहीं। तुम मेरे उपदेशानुसार चल सकती हो। प्रति दिन जब तुम्हारे हृदय में निराशा उत्पन्न होने लगे, अथवा जिस समय तुमको अपने पति देव का ध्यान उत्पन्न हो आवे, उसी समय तुम झट बैठ जाओ, अपनी आँखें बन्द करलो, और अपने मन में पति के शरीर की कल्पना करो। तुम जानती हो कि मनुष्य की प्रिय वस्तु उसके ध्यान में तुरन्त उपस्थित होआती है। जब वह चित्र वा उसका शरीर तुम्हारे मन के सामने आजावे, तब तुम ज़रा भी चिन्तित वा दुःखित न होना, ज़रा भी रोना धोना नहीं। रो रो कर आँसू बहाने से तुम्हारा पति पृथ्वी की ममता में पड़ जावेगा, (इस प्रकार) तुम उसे संसार के मोह-बन्धन में बान्ध दोगी, और तुम्हारा कृत्य नीच और बिल्कुल उलटा हो जायगा। तुम्हें उसकी अवनति का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। तुम

अपने पति के अन्य लोक का चिन्तन कर सकती हो; तुम उन्हें मृतक नहीं समझ सकती हो, क्योंकि नेत्र बन्द करने से तुम्हारे पति का चित्र तुम्हें स्पष्टतया दीखता है, मानो जीवित है। जब वह चित्र उपस्थित होजाय, तब बारंबार यही भावना करो, यही निश्चय करो, यही अनुभव करो कि "वह ईश्वर है।" उसको ऐसा कहो, समझाओ, उपदेश दो, बारंबार कहो, उसके प्रति यही विचार प्रवाहित करो, कि "तुम ईश्वर हो, प्रभू हो, जगदीश हो; तुम्हारे चित्र में, तुम्हारे शरीर में, तुम्हारी मूर्ति में यह परमात्मा ही मुझे भासित हो रहा है।"

"जिस प्रकार जब हम टेलीफोन यन्त्र के पास जाते हैं, और उससे कान लगाते हैं, तब हम कुछ सुनते हैं, उस समय हमें जो कुछ आवाज़ सुनाई देती है, वह हम जानते हैं कि उस लोहे के यन्त्र की नहीं वरन् उस दृश्य के पीछे वा यन्त्र की दूसरी ओर पर खड़े अपने मित्र की होती है। इसी प्रकार जब तुम अपने सामने अपने स्वर्गीय पति के चित्र को देखो, तो यह निश्चय करो कि उस चित्र के पीछे (अन्तर्गत) परमात्मा ही है। उसे सम्बोधन कर कहो, "तुम प्रभु हो, परमेश्वर हो।" इसी रीति से तुम अपने स्वर्गीय पति का उद्धार कर सकती हो।"

जब हम अपने परलोकगत सम्बन्धियों का उद्धार कर सकते हैं, उनकी उन्नति और सहायता कर सकते हैं, तो उसी तरीक़े से निस्सन्देह हम अपने जीवित मित्रों का भी उद्धार, उन्नति और सहायता कर सकते हैं।

जब पति पत्नी अपने जीवन को इस प्रकार व्यतीत करते हैं, तब उनका मिलाप (संयोग) केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन और एक दूसरे के सुख का कारण हो जाता है।

(कदाचित्) तुम कहो कि हर जगह ही पति अपनी स्त्री के सुख को बढ़ाना चाहता है; जिससे उसे सुख हो वह सब कुछ उसके लिए प्रस्तुत करना चाहता है; और लोग अज्ञान के कारण समझते हैं कि हम ने ठीक राह पकड़ी है; वे समझते हैं कि विषय-तृष्णा को पूरी करना और इस प्रकार लोगों को सुखी बनाना ही उपयुक्त मार्ग है; पर ऐसी बात नहीं है। इन तरीक़ों से तुम अपने को और दूसरों को केवल नीचा गिराते हो। प्रकृति का नियम है कि जो मुझे सुखी करता है, वह तुम्हें अवश्य सुखी बनाएगा। जो मेरे लिए अच्छा है, वह तुम्हारे लिए भी अच्छा है। यदि मैं आगे बढ़ता हूं, तो तुम भी आगे बढ़ोगे ही, मेरा उत्कर्ष तुहारा उत्कर्ष है। विना सारे संसार को बीमार डाले मैं स्वयं बीमार नहीं पड़ सकता। अपने शरीर को स्वस्थ रखने से मैं समस्त विश्व को स्वस्थ रखता हूं। आघात और प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी होते हैं।

Action and Reaction are equal and opposite.

यदि मैं तुमको वास्तव में सुखी रख रहा हूं, तो मुझे भी सुखी अवश्य होना चाहिए। किन्तु लोग समझते हैं कि किसी मनुष्य की रुचि के अनुसार कार्य्य करने से उसे सुख मिलता है। पर ऐसा नहीं है। उलटा इससे निराशा और घृणा उत्पन्न होती है।

ऐसे कामों से दोनों दुःख उठाते हैं, दोनों ही अपने को हतभाग्य, हताश और दुःखित समझते हैं। उन के हृदय में चिन्ता और भय भरे रहते हैं।

परस्पर सुखी बनाने के मार्ग की यह अनभिज्ञता वा अज्ञानता ही है जो असल में इन चिन्ताओं और दुःखों की जड़ है। यदि तुम एक दूसरे को सुखी करना चाहते हो, तो

तुम्हें अपने क्षुद्र स्वार्थी भाव को विशाल बनाना होगा। तुम्हें अपने मित्र के सच्चे भावों का अनुभव करना होगा। अपनी पत्नी को प्रचण्डबल अर्पित करना होगा, प्रचण्डबल उसमें अवश्य प्रतिबिम्बित होना चाहिए। परस्पर एक दूसरे को तुम्हें ज्ञान देना होगा, इस प्रकार तुम अपने साथियों को सुखी बना सकोगे और अन्त में स्वयं भी सुखी बनोगे। यदि तुम सच्चे हितैषी हो, तो तुम उन्हें ऐसी वस्तु ज़रूर दो, जो सब सुख की असल जड़ है। और वे वस्तुएं ज्ञान और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता हैं। इन वस्तुओं को अपने संगियों को दो। प्रत्येक पति का यह धर्म है कि वह अपनी पत्नी को शिक्षा दे। जो पति अपनी स्त्री का शिक्षक नहीं, वा जो पत्नी अपने पति के उन्नत और शिक्षित होने में कारण नहीं बनती, और जिससे पति आत्म-स्वतंत्रता एवं ज्ञान नहीं प्राप्त करता, वह पत्नी पत्नी होने के योग्य विल्कुल नहीं। ऐसी स्त्री पापिनी है। इसी तरह वह पति भी पापी है, ऐसा पापी कि जो अपनी स्त्री के लिए अपने घर को विश्व विद्यालय (शिक्षा का स्थान) नहीं बनाता। एक दूसरे को सुखी बनाने का वास्तव में यही मार्ग है।

ईसा (क्राइस्ट) के अपौरुषेय गर्भाधान का राम यों समाधान करता है:—ईसा की माता 'मेरी' बड़ी शुद्ध, पवित्र और ईश्वर-भक्त थी। वह एक ऐसी स्त्री थी जो कुछ हद तक साक्षात्कार कर चुकी थी, जो दिव्य-दृष्टि युक्त थी, वह परमात्मा से अभेद हुई २ थी। और ज़करिया नाम का मनुष्य (तत्पश्चात् जौसेफ, उसको कलंक से बचाने के लिए ज़क-रिया की जगह जाखड़ा हुआ, अथवा जकरिया का नाम लेना यदि तुम्हें नापसन्द हो, तो हम जो ज़फ ही कहेंगे, जोज़ेफ भी अति शुद्ध और पवित्र पुरुष था, वह भी सब में आत्म-

साक्षात्कार कर चुका था। उसनें परमात्मा का अनुभव किया हुआ था। दोनों नवयुवक और पक्की आयु के थे। ऐसा हुआ कि जब मेरी (अर्थात् मेरी का शरीर) और उस का पति दोनों आत्म-निमग्न थे, जब दोनों पूर्ण समाहित चित्त थे, उसी समय मेरी ने गर्भ धारण किया, उसी समय गर्भवती होगई। पश्चात वह इस घटना को बिल्कुल ही भूल गई।

प्रायः ऐसा होता है कि लड़के शाम को जगाए जाते हैं, और उन को दूध या मिठाई आदि खाने को दी जाती है। पर दूसरे दिन उन से यदि पूछा जाय कि गत रात को जो दूध या मिठाई तुम्हें दी गई थी, वह तुम ने पाई या कि न पाई? तो वह प्रायः यही कहेगा "ओ मैं ने कोई नहीं पाई, तुमने मुझे कोई ऐसी चीज नहीं दी, तुमने सब बहन को दिया होगा"। यह सत्य है कि लड़के ने रात्रि में दूध या मिठाई पाई, बच्चा दूध पान करते समय या मिठाई खाते समय ज्ञानातीत अवस्था (एक प्रकार की तुरिया वस्था में) था, उसका दिमाग़ किसी दूसरी जगह था। जैसे नींद में चलने वाले मनुष्य रात्रि में चलते फिरते हैं और अजीब अजीब काम भी कर लेते हैं, पर जब इस के विषय प्रातः काल उनसे पूछा जाता है, तो उन्हें रात की बातों का ध्यान ही नहीं रहता। वैसे ही ईसा के अपौरुषेय जन्म के विषय में राम का यह कथन है कि जब "जोज़फ़" और 'मेरी' दोनों तुर्य्या अवस्था में, आत्म-साक्षात्कार की दशा में निमग्न थे—नींद में चलने वालों की अवस्था में नहीं—तब मेरी जक़रिया या जोज़फ से गर्भवती हुई। वह ऐसी अवस्था थी कि जिस में इस क्षुद्र देह का भान नहीं रहता, कि जब तुम दिव्य शरीर में रहते हो। उसी स्थिति में वे दोनों हम-बिस्तर हुए

(संभोग किया), और मेरी को गर्भ धारण हुआ; पर जब बाद में उस से गर्भ का कारण पूछा गया, तब वह कुछ भी न कह सकी, और ईसाई लोग कहने लग गए कि उसे पवित्र-आत्मा (Holy Ghost) द्वारा गर्भादान हुआ, जिस का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर ज्ञान-संपन्न हो कर, "पवित्र आत्मा से व्याप्त होकर, एवं ब्रह्माकार वृत्ति में लीन हो जाने पर" उसने गर्भ धारण किया। और इस प्रकार क्राइस्ट "पवित्र-आत्मा" (Holy Ghost) का पुत्र अभिहित हुआ। प्रकृति के नियम जैसे आज हैं, वैसे उस समय भी थे, पर तौ भी हम लोग कह सकते हैं कि ईसा 'पवित्र-आत्मा' (Holy ghost) का पुत्र है।

इसी से 'राम' कहता है कि इसी आचरण के अनुकुल सारे संसार को चलना चाहिये ताकि ईसामसीह के समान अन्य अनेक लोग उतपन्न हो सकें। यदि तुम मिल्टन शेक्सपीयर, क्राइस्ट ऐसे महा पुरुषों को उतपन्न करने की इच्छा रखते हो, यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी सन्तान सारे संसार अथवा अपने परिवार की हित करने वाली हो, तो अपने अन्तः करण को शुद्ध करो, उस की अधोगति न होने दो। 'राम' तुम्हें अपने पुत्र कलत्र के साथ इस प्रकार का जीवन बिताने को कहता है कि जो तुमको क्षुद्र, स्वार्थी भावनाओं से परे रक्खे, जो जीवन तुम्हें बराबर ईश्वर में, भगवान् में, पवित्र आत्मा में लीन करे, सर्व के साथ तुम्हें एक करे। यदि पति पत्नी दोनों ऐसे उच्च विचार, ऐसी पुण्यमयी शक्ति और उच्च भावों से संपन्न होंगे, तो उन की सन्तान, ऐसे पिता माता की सन्तति भी क्राइस्ट (जैसी) होगी। यदि तुम चाहो, तो इस ज़माने में भी ईसा-मसीह पैदा हो सकते हैं।

गृह प्रीति की हद नहीं, बल्कि प्रीति का केन्द्र बनाना

चाहिये। लोग अपने घर को प्रीति की सीमा बना लेते हैं ताकि उनका प्रेम और प्रणय उस मर्य्यादा के बाहर न जा सके, गृह और पुत्र कलत्र को प्रीति का केन्द्र बनाना चाहिये जिस से प्रेम की किरणें सब दिशाओं में छिटक सकें। तुम्हारा प्रेम वहीं सीमाबद्ध नहीं होना चाहिए। तुम्हें अपनी पत्नी को अपने प्रेम और प्रीति की सीमा ही नहीं बना देना चाहिए। तुम अपने स्वार्थी बिचारों द्वारा अपने को और निज पत्नी को—दोनों को—नीचे गिराते हो, और इस प्रकार स्वयं दोनों का विनाश करते हो। पत्नी तुम को प्रीति करना सिखलाती है, और उस प्रीति को शुद्ध करने से, उस प्रीति को सारे विश्व की प्रीति बना देने से, उस बाह्य रूप, रंग चित्र और आकार की प्रीति को परम तत्त्व वा परमात्मा की प्रीति बनादेने से, यदि तुम उस प्रीति के साथ प्रत्येक पदार्थ के निकट जाते हो, और उसी से तृण, पुष्प, नदी, पहाड़ी और खाइयों पर दृष्टि डालते हो, तब (समझ-लो कि) तुम सारे संसार के साथ अभेद हो चुके।

पत्नी तुम्हें अपनी स्थिति समस्त जगत के साथ एक समान स्थापन करने को सिखाने के लिए है; जगत से तुम्हारा समान सम्बन्ध तोड़ने के लिए वह नहीं है। अब "राम" तुम्हें कुछ आध्यात्मिक नियमों को बतलाता है। यह आध्यात्मिक नियम इस संसार की सर्व प्रकार की प्रीतियों का शासन करते हैं। यदि राम उन्हें न भी बतलाए, तौ भी तुम उनका अनुभव कर रहे हो और सदा करते रहोगे, किन्तु कहदेने से तुम सावधान हो जाओगे। जैसे गाड़ीवान् को यह विदित न होने से कि आगे रास्ते में क्या है और गाड़ी रुकावट (गति कुंठन-स्थान, Stumbling block) को टपती है, तो सारी गाड़ी हिल जाती है, और बड़ा धक्का

लगता है; पर यदि उसे सावधान करदो, यदि उसे आने वाली रोक की सूचना दे दो, तो वह सावधानी से उस गाड़ी को रोक से बचा ले जाता है। वैसे ही तुम्हारे सांसारिक व्यवहारों में भी अनेक विघ्न बाधाएं, अनेक आपदाएं, अनेक असफलताएं और मानसी व्यथाएं आती हैं। पर इन मर्म वेदनाओं, इन विपत्तियों, असफलताओं एवं निराशाओं की सम्भावना कब समझनी चाहिए? यह "राम" तुम्हें बताता है। और जब तुम यह जान लोगे तो फिर तुम्हें दुःख न होगा। उपाय बहुत सरल है, और जहां तक हो सकेगा तुम उन विपत्तियों से बचोगे। गणित-शास्त्र के नियम के समान यह नियम भी सत्य है। किसी भी भौतिक तथ्य के समान भी यह कानून सत्य है। "जब कभी कोई स्त्री या पुरुष किसी व्यक्ति, मूर्ति वा किसी भौतिक पदार्थ से प्रीति करने लगता है, तब कुछ समय तक तो उस जड़ पदार्थ का उपभोग उसे करने मिलता है, पर जैसे ही वह वस्तु उसके अन्तः करण में घर कर जाती है, जैसे ही उसका जीवन तक उस से व्याप्त (रंजित) होजाता है; वैसे ही—ठीक उसी समय—वह बस्तु वहां से हटा दी जाती है"। यही नियम (विधान) है। कोई इससे बच नहीं सकता। ऐसी कोई शक्ति कोई सत्ता नहीं, जो ऐसी घटना को रोक सके, वा उस का निवारण कर सके। प्राचीनतम काल से लेकर आज तक इस नियम का कभी व्यतिक्रम हुआ ही नहीं है।

"जहां किसी वस्तु के साथ तुमने चित्त जोड़ा, किसी नाम या व्यक्ति से ममता की, किसी महान पुरुष का आश्रय लिया, उस पर विश्वास किया, उन पर भरोसा कर अपना भार-डाला, तो झट वह आधार स्तम्भ खींच लिया गया और तुम धम्म से नीचे जा गिरे"। तुम एक टेबुल के सहारे खड़े

हो, यदि उस टेबुल को खींच लिया जाय, तो तुम गिर पड़ते हो, तुम्हें चोट लगती है । यह क्या शिक्षा देता है ? यह हमें शिक्षा देता है कि इन स्थूल भौतिक पदार्थों के आश्रय हमें अपनी प्रीति नहीं बनाए रखना चाहिये। इन जड़ पदार्थों को यद्यपि अपनी प्रीति का पात्र तो नहीं बनाना चाहिये, किन्तु तौ भी जड़ पदर्थों के विना हमारे हृदय में प्रेम का संचार भी नहीं हो सकता। इन जड़ पदार्थों के ही द्वारा हम प्रीति करना सीखते हैं। पर जब एकबार प्रीति का पाठ पढ़ चुकते हैं, तब प्रकृति हम को यही उपदेश देती है कि यह प्रीति जड़ वस्तुओं में बान्ध कर नहीं रखी जा सकती। उस प्रीति का प्रसार होना चाहिये, उसे अन्तरात्मा तक पहुंचाना चाहिये। पत्नी के चरणों में बैठ कर जिस प्रीति की शिक्षा पाई है, उसे जो अन्तरात्मा को अर्पण नहीं करता, उस मनुष्य को धिक्कार है । यदि तुम ऐसा नहीं करते तो तुम नरक-गामी होगे, और तुम्हें दुःख मिलेगा। पति पत्नी दोनों को एक साथ ही उन्नति करनी चाहिये। और जबकि पत्नी हमें प्रीति करना सिखलाती है, तो जो प्रीति हम सीखते हैं, उस प्रीति को इस शरीर में ही स्थापित न कर देना चाहिये किन्तु समस्त विश्व को, प्रत्येक प्राणी को, अर्पित करना चाहिये ।

सांसारिक सुख रूपी क्षेत्र में बोए हुए बीज में आध्यात्मिक उन्नति अंकुरित नहीं होती। इस लिए जब तुम्हारी प्रीति का बीज पति या पत्नी के पार्थिव क्षेत्र (शरीर) में आरोपित होता है, तब वह भौतिक शरीर में आरोपित प्रीति का बीज, मानों ज़मीन में डाल कर, मिट्टी से ढक दिया होता है; पर जब वह प्रीति रूपी बीज नष्ट होकर बाहर प्रस्फुटित होता है और खुली वायु (निर्गत आकाश) में सुफल फलता है, तभी वह प्रीति श्रेयस्कर होती है; अतः पति वा

पत्नी में वा अन्य किसी भौतिक पदार्थ में आरोपित प्रीति रूपी बीज को अवश्य नष्ट होना चाहिये, और तब खुली वायु में उगकर फलना चाहिये। (अतएव) सांसारिक पदार्थ निमित्त जितनी कुछ प्रीति है, उसके सम्बन्ध में सदा प्रत्यक्ष असफलता ही दीख पड़ेगी। जब वह (भौतिक पदार्थ में) बोया हुआ (प्रीति) बीज नष्ट होता है, प्रकृति का नियम है, कि वही (प्रेम) बीज तुम्हें एक न एक दिन आत्मानुभव अवश्य करा देता है। यह सच है कि जिसने कभी प्रीति ही नहीं की, वह ईश्वर को नहीं पा सकता।

साधारणतः कहा जाता है कि धर्म को सांसारिक प्रीति से कुछ सरोकार है नहीं। पर 'राम' कहता है कि सरोकार है। सांसारिक प्रीति का सदुपयोग तुम्हें ईश्वरानुभव कराता है। "अन्य (वाह्य) सुख तो (आत्मानुभव के मार्ग में जो दर्द वा पीड़ा मिलती है) उस पीड़ा के भी बराबर नहीं"। वस्तुतः वही शुद्ध प्रीति जो तुम्हें ईश्वरानुराग कराती है, वह शुद्ध प्रेम ईश्वर का ही प्रायाय (Synonym) है।

वैवाहिक बन्धन को उच्च बनाना ही पति का उद्देश्य होना चाहिये, न कि द्रव्योपार्जन, धनसञ्चय और पारिवारिक सम्बन्ध का दुरुपयोग। जो पदार्थ वास्तव में सुख का साधन थे, वही दुःख देने का परिणाम बनाए जाते हैं। जो साधन मात्र है, उसे साध्य मत बनाओ। धन दौलत तो केवल शीत, उष्ण से बचाने, क्षुधा, तृषा को निवारण करने और निर्विघ्न एकान्त स्थल में हिफ़ाजत से रहने का साधन मात्र होना चाहिए। अब विचारो कि क्षुधा पिपासा दूर करने के लिए, एवं सर्दी न हो इस के वास्ते कपड़े लाने के लिए, कितने थोड़े द्रव्य की आवश्यकता है।

लोग कहते हैं, "हमें सर्दी पकड़ती है"। पर सर्दी असल में

आप को नहीं पकड़ती। आप ही सर्दी को पकड़ते हैं। रोग आप के पास नहीं आता। आप ही रोग के पीछे पड़ कर उसे जा पकड़ते हैं, यह कहना बिल्कुल ठीक है। सर्दी से बचने के लिये वस्त्र अवश्य पहिनना चाहिए, पर (यह स्मरण रहे कि) वस्त्र केवल शरीर-रक्षा के लिये और अपने आप को सर्दी से बचाने के लिए हों। (इस लिए) इस काम के वास्ते गाढ़ा और सस्ता वस्त्र भी हो सकता है, उस के बहुमूल्य होने की आवश्यकता नहीं। आधुनिक चमकीले और आलीशान मकानों के बदले हम छोटे छोटे घरों में रह सकते हैं, अन्य लोगों अथवा जंगली जानवरों के हमले से बचने के लिये हमें साफ सुथरे छोटे छोटे मकान ही काफी हैं। ऐसे सुन्दर मकानों की कोई आवश्यकता नहीं है।

लोगों ने अपने घरों की शोभा और सौन्दर्य्य को स्वयमेव अपने जीवन का एक उच्च उद्देश्य बना लिया है, दूसरों को कपड़ा पहनाने की सुन्दरता, खाने पीने की चीज़ों की जटिलता, यह स्वयं एक उद्देश्य और इष्ट मान लिया है, नहीं नहीं, उद्देश्य और इष्ट ही नहीं बल्कि यही साधन और साध्य मात्र समझ लिए हैं।

संसार के इतिहास में, हम कुछ लोगों को झोपड़ों में, छोटे छोटे मकानों में रहते पाते हैं। उन के कपड़े बहुत ही मामूली थे, और भोजन भी उन्हें मामूली मिलता था। पर तो भी वे लोग जगत्-विख्यात शूर वीर थे।

तुम प्लेटो के विषय में जानते हो, प्लेटो के फारसी नाम का अर्थ "पीपा वा पेटी में रहने वाला" है। प्लेटो का घर 'पीपा' वा 'पेटी' था और संसार से उपरान्त (अलग) होकर वह इसी मकान में जाकर रहता था।

ज़रा सोचो तो, जो लोग ऐसी दरिद्रता में रहते थे,

ऐसे सादे ढंग से रहते थे, उन्हों ने संसार के लिए इतना (उपकार) किया है।

एवन नदी के तट पर स्ट्रैवफोर्ड (Strafford) ग्राम में शेक्सपीयर का गृह कोई भव्य भवन नहीं है। पहिले वह बहुत निर्धन था, पर पीछे उसने धन इकत्रा किया। जीवन की प्रथम अवस्था में वह नाटक के दर्शकों की देख रेख तथा उनके घोड़ों की खबरदारी किया करता था।
'निउटन' भी निर्धन मनुष्य था। पुस्तक खरीदने के लिए या किसी दरिद्र को कुछ देने के लिए जब उसके पास पैसे न होते, तो वह बहुत उदास हो जाता था; परन्तु किसी अन्य अवसर पर वह अपनी ग़रीबी से कभी शोकित नहीं होता था। ज़रा देखिये, जिन्हें सदा मोटा खाना और मोटा पहनना पड़ता था, उन्हों ने ही संसार के लिये इतना उपकार किया है। भारतवर्ष के हिन्दू लोग पहिले जंगली कन्द मूल पर ही गुज़ारा करते थे, पर इन्हीं लोगों ने जगत को सर्व श्रेष्ठ तत्वज्ञान, वेदान्त—मोक्ष और भक्ति का दर्शन शास्त्र प्रदान किया है।

अपने को श्रेष्ठ और सत्पुरुष बनाने का प्रयत्न करो। भव्य भवन और सुन्दर सदन बनाने में अपनी शक्ति मत खर्चो। अपने विचार नष्ट न करो। बहुतेरे गृह बड़े, ऊंचे, और आलीशान हैं, पर उन में रहने वाले मनुष्य बिल्कुल ही ठिगने और क्षुद्र हैं। भारत में अनेक विशाल कबरें हैं, पर (जानते हो) उन के भीतर क्या है? केवल सड़ी लाशें, रींगने वाले कीड़े और साँप।

बड़े बड़े मकान बनाने और उन में चमकदार चीज़ों के सजाने में अपनी शक्ति का नाश कर अपने को, अपनी पत्नी और अपने मित्रों को, बड़ा बनाने का यत्न मत करो। यदि

तुम इस विचार को ग्रहण कर लोगे, इसे हृदयंगम् कर लोगे, इसे जान और समझ लोगे कि जीवन का एक मात्र आदर्श और उद्देश्य शक्ति का दुरुपयोग और धन का संचय करना नहीं है, वरन् आन्तरिक शक्तियों का विकास करना, ईश्वरत्व और मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्म—शिक्षण करना है। यदि तुम इस का अनुभव करके इसी ओर अपनी सारी शक्तियों को लगाओगे, तो पारिवारिक बन्धन कभी तुम्हारे लिए विघ्न रूप न होंगे।

कुछ लोग कहते हैं, हम तो सादी रीति से रह सकते हैं, पर हमारे मेहमान भी तो हैं। यदि हम लोग कमण्डल आदि धारण करें तो वे क्या कहेंगे।

ऐ मेरे प्यारे! तुम अपने लिए जीते हो, वा दूसरों के लिए? अपने लिए जीओ। तुम्हारे जीवन में दूसरे को दख़ल देने की आवश्यकता नहीं है। अपना भोजन करते समय तुम भोजन करते हो या वे? तुम अपना खाना आप पचाते हो वा तुम्हारे लिये वे पचाते हैं? देखते समय तुम्हारी अपनी आँखों के स्नायु तुम्हें सहायता देते हैं, या उन की आँखों के? अपने गुरुत्वाकृष्ण का केन्द्र (Centre of Gravity) तुम आप बनो। स्वाश्रयी हो। ज़रा अपने भीतर के आधार वा अधिष्ठान को पा लो और मेहमानों के मत वा विचारों की पर्वाह मत करो। भोजनों और बिछावनो को अतिथि-सत्कार का मूल-मंत्र न बनाओ। लोग समझते हैं कि मेहमानों को स्वादिष्ट भोजन और सुन्दर पलंग नहीं देंगे, तो हम पूरे अतिथि-सेवी न होंगे। इस प्रकार घर का स्वामी इन चीज़ों का एक अनुबंध (appendage) मात्र रह जाता है। कृपा कर के अपने को द्रव्य का उपकरण (appendage) न बनाओ, द्रव्य को ही अपना उपकरण

बनाओ, अपनी शक्तियों का अनुभव करो।

ऐसा करो कि जब तुम्हारा मेहमान (अथिति) तुम्हारे यहां से अपने घर को जाने लगे, तो वह स्वच्छ चित्त, उदित और समुन्नत होकर जाए। यह योजना करो कि जैसा वह अपने घर से आया है, उससे अधिक बुद्धिमान बन कर जाए। अपने स्वजनों के प्रति अपना यही कर्तव्य समझो। अपने गृह संसार को सुखी करने का यही मार्ग है। इसी तरीके से गृहस्थी अपने गृहस्थ को बिघ्न के पहाड़ की जगह उन्नति का सोपान बना सकता है। यदि तुम्हारा अतिथि पहिले की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होकर लौटता है, तो उस के खाने पीने की अधिक पर्वाह न करो। उसे इन से कुछ श्रेष्ठतर चीज़ दो; उसे ज्ञान और बुद्धि दो। उसे आप की प्रीति का आन्नद लूटने दो। याद रखो कि यदि मैं तुम्हें एक कौड़ी भी न दूं, कुछ भी शारीरिक सेवा न करूं, केवल प्यार से, सच्चे और साफ़ दिल से तुम्हारे प्रति प्रसन्नता-भरी हंसी (Smile) दूं, तो तुम्हारा प्रफुल्लित होना, समुन्नत होना और उछलना अनिवार्य्य है। इतने से ही तुम्हारी बड़ी सेवा हो जाती है। किसी मनुष्य को धन देना कुछ नहीं है, यह वैसा है कि पहिले पत्नी को धन देकर पीछे से त्याग देना। पत्नी को धन नहीं चाहिये, उसे प्रीति चाहिये। किसी मनुष्य को धन देकर तुम पातकी का सा आचरण करते हो। तुम उसे धोखा देकर भुलाया चाहते हो। उसे प्रेम और ज्ञान दो, उसे स्वच्छ चित्त और समुन्नत बनाओ। यह भारी अतिथि-सत्कार है, और यही तुम्हें करना चाहिये। ऐसी ही प्रीति तुम्हें अपनी स्त्री और बच्चों के साथ रखनी चाहिये।

श्री

मांस खाने की वेदान्तिक कल्पना ।

प्रश्न—मांस खाने के विषय में (वेदान्त का मत) क्या है ?

उत्तर—मांस के सम्बन्ध में लोग समझते हैं कि भारत के लोग पशुओं के प्रति दया-भाव के कारण मांस नहीं खाते थे। यह ठीक हो सकता है, क्योंकि कुछ दल (मत के लोग) ऐसे हैं कि जो इसी कारण से मांस खाने से परहेज़ करते हैं। किन्तु कम से कम वेदान्ती लोग इस लिये ऐसा नहीं करते।

वेदान्त इस भित्ती पर तुम से मांस-भक्षण से परहेज़ करने को नहीं कहता। कदापि नहीं, वेदान्ती लोग और साधारणतः स्वर्मी लोग मांस नहीं खाते, किन्तु उन में मांस न खाने का कारण पशुओं पर निर्दयता न करना नहीं है। यह युक्ति वा तर्क ठीक नहीं है।

वेदान्त के अनुसार दया मात्र दुर्बलता है। आप चाहे इस से चौंक पड़ें, पर बात है ऐसी ही। दया की इस पद्धति को जो दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा है, या यों कहिये, कि दूसरों की इच्छाओं और तरंगों की सेवा है, तत्त्वज्ञानी ऐसा ही समझते हैं। अपने सहचरों की यह अनुकूलता करना नर-नारियों के मिथ्याभिमान के सिवाय और कुछ नहीं है, प्रतिमापूजन और दुर्बलता का एक प्रकार है। यह दया या मिथ्याभिमान, दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा, क्या समाज की प्रशंसा की बात है ? नहीं। ये सब अज्ञान के

गुण हैं, और कुछ नहीं।

कितने पाप और भूलें करुणा के नाम में की जाती हैं? संगति में समानशीलता (Congeniality) की इच्छा से कितनी भूलें हुआ करती हैं?

एक मनुष्य की कुछ ऐसे नवयुवकों की संगति होगई, कि जो खाना, पीना, और मौज उड़ाना पसन्द करते हैं।

अच्छा, नौजवानों की टोली में से एक कहता है कि मद्य पी जाय। दूसरे साथी राज़ी हो जाते हैं, और यह नया (अजनबी) आदमी अच्छा साथी (संगी) होने की इच्छा का शिकार होता है, और केवल उन्हें (अपने साथियों को) खुश करने के लिए शराब पीना शुरू करता है। उसकी अपनी इच्छा मद्य-पान की नहीं है, किन्तु अपने सहचरों (संगियों) को खुश करने के लिए वह उनका अनुकरण करता है। उस में दूसरों को प्रसन्न करने की अभिलाषा है, और यह इच्छा ही उसे शराब पिलाती है। दूसरी बार यही सज्जन वैसी ही संगति में पड़ जाता है, और दूसरों को केवल प्रसन्न करने की इच्छा से शराब पीने को फिर प्रलोभित होता है। और समय समय पर ऐसा ही करते करते एक वह समय आजाता है कि जब मद्यपान के व्यसन का तुच्छ दास बन जाता है।

इसी तरह, केवल दूसरों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से नारियां भी वह काम करती हैं जो धीरे धीरे उन्हें किन्हीं दुर्व्यसनों की दासी बना देता है। इस लिए वेदान्त कहता है कि दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा वास्तव में अज्ञान, दुर्बलता और मिथ्याभिमान के योग के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरों को प्रसन्न करने की नियत (उद्देश) से कभी कुछ मत करो। जो 'नहीं' कह सकता है, वह वीर है। "नहीं"

कहने की तुम्हारी सामर्थ्य से तुम्हारा चरित्र-बल और बहादुरी प्रगट होती है ।

अब दया के सम्बन्ध में लीजिये। केवल यह समझते हुए कि दूसरों के भावों का उन्हें आदर करना चाहिए, कितने लोग अपने को नरक में रखते हैं ? राम जो कह रहा है, उसे आप चाहे दारुण वा घोर पापिष्ठ कानून कह लें वा मानलें, किन्तु यह वह कानून है जिसका गुण आप एक दिन अनुभव करेंगे ।

ज़रा ख़याल तो कीजिए कि इस संसार में कितने लोग केवल इसी लिए नरक-भोग कर रहे हैं कि वे दयावान हैं; सम्बन्धियों या सुहृद्जनों के विरुद्ध होने के कारण अथवा किसी मनुष्य का हृदय टूट जाने के भय से वे सत्य का अनुसरण करना या सत्य की आज्ञानुसार बर्ताव करना निष्ठुरता वा निर्दयता समझते हैं ।

वेदान्त कहता है, यदि तुम सत्य पर इसी लिए आपत्ति करते हो कि उससे किसी का दिल टूट जायगा, तो सत्य की हत्या होने की अपेक्षा किसी व्यक्ति की मृत्यु बेहतर है । वेदान्त कहता है, "इस या उस व्यक्ति के भावों की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो", क्योंकि सत्य का आदर करना वास्तव में मित्र की क़द्र करना है । उसके मिथ्याभिमान या इच्छाओं का जितना ही अधिक आदर या ध्यान तुम करोगे, उतनी ही अधिक चेष्टा तुम कर रहे हो उसके सच्चे आत्मा के बध की, जो "सत्य" स्वरूप है । "उसके बाह्य शरीर की अपेक्षा "सत्य" का अधिक आदर करो" ।

पुनः, कितने लोग ऐसे हैं जो आत्म-सम्मान की इस कल्पना के कारण अपने लिए नरक की सृष्टि रच रहे हैं ? कैसा घोर अनर्थ समझा जाता है । "आत्म-सम्मान" से लोग

इस तुच्छ शरीर का, इस क्षुद्र व्यक्तित्वका, "आत्म-सम्मान" समझते हैं।

माताओं, बहनों, पिताओं, भाइयों और बच्चों के रूप में परमात्मा! ऐ परमेश्वर! तू देखले कि आत्म-सम्मान का अर्थ इन तुच्छ शरीरों या व्यक्तित्व का सम्मान नहीं है, समझले कि आत्म-सम्मान का अर्थ है "सत्य" का सम्मान, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का सम्मान। जिस प्रकार के "आत्म-सम्मान" को तुम उत्तेजन दे रहे हो, उससे "आत्म-सम्मान" की ओट में तुम अपने सच्चे "आत्मा" का अपमान करते हो।

जब तुम ईश्वरानुभव से परिपूर्ण हो जाते हो, तब तुम अपने आत्मा (स्वरूप) का सम्मान करते हो; जब तुम अन्तर्गत ईश्वर के ध्यान से परिपूर्ण होते हो, तब तुम आत्म सम्मान से परिपूर्ण हो। देह की पूजा के द्वारा तुम आत्म-हत्या कर रहे हो, तुम अपने लिए गढ़ा खोद रहे हो।

मांस के विषय में वेदान्त कहता है, "अपने शरीरों से लग्न न लगाओ, अपने शरीर के मरने या जीने की चिन्ता न करो, तुम्हारे शरीर की लोग पूजा करते हैं या उस पर ढेले मारते हैं, इसकी परवाह न करो। इससे ऊपर उठो"।

एक मनुष्य इस शरीर को वस्त्र पहराता है और दूसरा उन्हें फाड़ डालता है, इसकी कोई परवाह (फिक्र) न होनी चाहिए।

"जब कि स्तुतिकर्ता और स्तुत्य, या निंदक और निंद्य एक ही (अभिन्न) हैं, तो न निन्दा है न स्तुति"।

इस दशा में, यदि तुम अपने सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करो, यदि इस क्षुद्र शरीर का ज्ञान तुम्हारे लिए मिथ्या होजाय, तो जहां तक तुम्हारा सम्बन्ध है, दूसरों के

बाहरी मांस और खून का आदर ग़ायब होजायगा।

आज राम तुम्हारे कुछ अतिप्रिय अन्ध-विश्वासों को चकनाचूर करदेगा।

वेदान्त कहता है, 'यह कानून है:—"दूसरी मूर्तियों को तुम उसी अंश तक सच्ची समझ सकते हो जिस अंश तक तुम अपनी देह रूपी प्रतिमा को असली समझते हो"। यह नियम है। दूसरों के शरीर या व्यक्तित्व को आप ठीक उसी मात्रा में असली समझ या ग्रहण कर सकते हो जिस मात्रा में तुम अपने व्यक्तित्व या शरीर को असली समझते हो। यह कानून (नियम) है।

जब तुम व्यक्ति और देह से ऊपर उठोगे, तब दूसरों के शरीर या व्यक्तित्व का भाव तुम्हारे लिए मिट जायगा, वे आत्मा-मय और अति सूक्ष्म बन जावेंगे, वे पहले के से स्थूल न रह जांयगे। इस दशा में, जिस मनुष्य ने 'सत्य' का अनुभव कर लिया है, उसके लिए दूसरी बात यह है कि चाहे कोटियों सूर्य और नक्षत्र शून्यता में फेंक दिये जांय, दर उसकी बलाय से। उसके लिए बकरों, भेड़ियों या बैलों के मरने से क्या आता-जाता है। कुछ नहीं, कुछ नहीं, उसके लिए इससे कोई भेद नहीं पड़ता, वह इससे ऊपर है।

दुनिया के अत्यन्त विकराल युद्ध में कृष्ण अर्जुन के सारथी थे। वहां अर्जुन विषाद तथा अवसाद को प्राप्त हुआ। दया और करुणा की वृत्ति ने उसे विह्वल कर दिया। तब तो यह वीर (अर्जुन) कांपने और थर्राने लगा; दया के विचार ने उसे दबा लिया। भगवान् के अवतार कृष्ण ने, दुनिया भर के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष कृष्ण ने, केवल भारत के नहीं, किन्तु अखिल विश्व के ईसू मसीह कृष्ण ने, तब तो अर्जुन से कहा, "तुम यह शरीर नहीं हो, यह व्यक्ति तुम नहीं हो,

सच्चा कर्त्ता परमेश्वर है"। कृष्ण ने उससे कहा "तुम्हारे शरीर के द्वारा परमात्मा काम कर रहा है"। कृष्ण ने उसे उपदेश देकर उसमें परमेश्वरानुभव जागृत कर दिया, उससे साफ साफ कह दिया कि "असलियत में वह क्या है", उसे भयसे निकाल लिया, उसे चिन्ता और दुर्बलता से छुटा दिया। उन्हों ने उससे कहा कि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप (आत्मा) अविनाशी है; कल, आज, और सदा एकसां है, उसमें विकार हो ही नहीं सकता, वह निर्विकार और निर्विकल्प है। और उन्हों ने उससे कहा, "अर्जुन तू मर नहीं सकता। इन देहों में से किसी को भी हटा दे, और वे स्वयं कभी नहीं मरते। तुम कभी नहीं मरते। और यदि तुम्हें पूर्ण सत्य का बोध भी नहीं तथा आवा-गमन की चार दीवारों में क़ैद हो, तब भी अनुभव करो कि अपना या उनका व्यक्तित्व सत्य नहीं है, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करो, जो परमेश्वर है, और जो अमर है। तुम कांपते और थर्राते क्यों हो? अपने उपस्थित कर्तव्य को देखो। यदि इस समय तुम्हारा सांसारिक धर्म इन सब मनुष्यों का बध करना है, तो इन्हें मार डालो"। भगवान् कृष्ण उससे कहते हैं, "मैं देवों का 'परम देव' हूँ, प्रकाशों का 'प्रकाश' हूँ, और क्या प्रति क्षण में कोटियों पक्षियों तथा पशुओं का नाश नहीं कर रहा हूँ? उन्हें शून्यता में नहीं फेंक रहा हूँ? मैं—'प्रकृति', परमेश्वर, जगन्नियन्ता—सदा ये काम कर रहा हूँ, फिर भी मैं सदा निर्लिप्त और निर्मल हूँ। ईश्वर नाश करता है तो क्या ईश्वर दोषी है? नहीं, ईश्वर फिर भी शुद्ध है"। फिर भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "यदि तुम सत्य का अनुभव करो, यदि तुम परमेश्वर से अभेद हो जाओ, यदि तुम अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव

करो, तो तुम्हारी देह परमत्मा का यंत्र मात्र बन जाय। यदि न्याय, धर्म, सत्य और अधिकार के लिए तुम्हारा शरीर लाखों और करोड़ों का संहार भी करदे, तो भी तुम शुद्ध, अविकल, और निष्कलंक होते हो"।

यह सत्य लोगों को अनुभव करना होगा। किन्तु तुम इसका अनुभव करो या न करो, राम को सत्य कहने से रुकना उचित नहीं।

वह वेदान्त था जिसने नर संहार करने में, बल्कि अर्जुन के अपने बहुत नगीची और प्रियतम संबन्धियों का नाश करने में कोई आगा पीछा नहीं किया। जो अपने गुरु, चचा, भाई बन्धु थे, उन सब का अर्जुन ने वध करना था। वेदान्त कहता है इन के वध करने से अर्जुन दूषित नहीं हुआ। तो फिर बकरों, या भेड़ियों, बैलों या, कोई भी पशुओं को मारने में वेदान्त कैसे संकोच कर सकता है? पर फिर भी वेदान्त तुम से मांस से परहेज़ करने को कहता है, पर बिल्कुल अन्य कारणों से।

मांसाहार तुम्हें उस दशा या अवस्था में पहुंचा देता है, जिस में तुम चित्त को आसानी से एकाग्र नहीं कर सकते। यदि मांस भक्षण तुम छोड़ नहीं सकते, यदि इस आदत को तुम जीत नहीं सकते, तो वेदान्त कहता है, "खाओ, मत छोड़ो"। विभिन्न खाद्य पदार्थ भिन्न भिन्न असर पैदा करते हैं। मद्य पीने से मनुष्य को नशा होता है। अफीम खाई जाने पर क्या एक खास तरह का असर नहीं पैदा होता? एक मनुष्य संखिया खाता है और उसका एक विशेष प्रभाव होता है। इसी तरह भोजन विशेष भी अपना खास असर पैदा करता है। और मांस भी ऐसा ही करता है। मांस शरीर पर जो असर डालता है, उस असर को धर्म के विद्यार्थियों

को आवश्यकता नहीं है।

यदि तुम सैनिक हो, अथवा उद्योग साध्य कृत्यों के पुरुष हो, तो वेदान्त कहता है तुम्हें मांस खाना चाहिए, क्योंकि तुम्हें उसकी ज़रूरत है, और तुम्हें केवल शाक आदि भोजन पर न बसर करना चाहिए। दूसरी वृत्तियों के लोगों के बारे में, राम कहता है, अपनी अपनी प्रकृतियों पर उसे आज़मा कर देखो। कुछ लोगों के लिए वह हितकारी है, और कुछ के लिए हानिकर। प्रकृति की योजना (plan) है कि योग्यतम व्यक्ति अवश्य जीयेगा। यहां हम ह्वेल (whales तिमिंगिल) मछलियों को बढ़ते देखते हैं, वे जीती बचती हैं; और उन्हें बचाने के लिए प्रकृति चाहती है कि वे छोटी मछलियों पर निर्वाह करें। हज़ारों छोटी मछलियां अवश्य नष्ट हो जाँय, पर बड़ी मछली जीती रहे। यह प्रकृति की व्यवस्था है। इसी तरह हम खनिज संसार में देखते हैं कि मट्टी, भूमि, नष्ट होजाती है और उद्भिद संसार अर्थात् वनस्पतिवर्ग की रक्षा होती है। उद्भिज्जों की खाद्य वस्तु मट्टी है। फिर पशुओं की रक्षा के लिए उद्भिज्ज पदार्थों को नष्ट होना पड़ता है, काम आना पड़ता है। पशु उद्भिज्ज पदार्थों को खा कर जीयें, यह प्रकृति की योजना है। यह प्रकृति की व्यवस्था है कि मनुष्य (सर्वोच्च वर्ग) पशुओं पर गुज़ारा करे और वे उसका काम दें, यही प्रकृति की योजना है। राम का इससे अभिप्राय पशुओं को खाना नहीं, केवल उन्हें काम में लाना है। पशुओं को मनुष्य की सेवा करनी होगी। तत्पश्चात् दुनिया के साधारण मनुष्य में भी हम देखते हैं कि उच्चतर लोग स्वभावतः बढ़ते चले जाते हैं। जब अतिव्यापी समर, संक्षोभ (राज द्रोह) और महामारियां आती हैं, तब निम्नतर और दुर्बलतर प्रकृतिवाले उच्चतरों के लिए मर जाते हैं। यह

प्रकृति की योजना है। यह कानून विश्व का शासन करता है।

इस लिए 'राम' कहता है, यदि मांस खा कर तुम विश्व-कार्य को अधिक लाभ पहुँचा सकते हो, तो मांस खाओ; यदि मांस से विरत रह कर तुम उच्च-तर सत्य की वृद्धि कर सकते हो, तो उससे परहेज रक्खो।

हरेक व्यक्ति को अपने परिछिन्न-आत्मा को परमेश्वर का स्वरूप समझना चाहिए। वेदान्त के अनुसार, सब को सब काम निस्स्वार्थ और अकर्तृम भाव से करना चाहिए। तुम्हें सब काम इस तरह पर करना चाहिए कि मानो तुम नहीं कर रहे, अर्थात् इस तुच्छ अहंकार के साथ अभिलाषाओं और अहंकार की दृष्टि से कुछ नहीं कर रहे। अभिलाषा और अहंभाव की यह दृष्टि तुम्हें त्याग देनी चाहिए। जब आपका शरीर संसार में प्रकृति की तरह काम करता है, 'सर्व' के लिए काम वितरण करता, काम का निरूपण करता, और काम को समाप्त करता है, बिना किसी स्वार्थ-मय अहंभावपूर्ण इच्छा के, बल्कि केवल 'अखिल' के लिए, समग्र के लिए, काम करता है। और यदि अखिल विश्व की उद्देश्य-वृद्धि निमित्त इस शरीर-यंत्र के लिए मांस खाना उतना ही आवश्यक हो, जितना एक पुतली घर में कुछ पहियों के लिए तेल से चिकनाया जाना; यदि तुम्हारे शरीर के लिए मांसाहार से ओंगा जाना उतना ही जरूरी है, जितना उन कुछ पहियों का तेल से ओंगा जाना; तब तुम मांस खाने से न झिझको। किन्तु जब केवल ज़ुबान के मज़े के लिए तुम मांस खाते हो, तब वह पाप हो जाता है। यदि अपनी इच्छाओं की तृप्ति के विचार से तुम मांस-भक्षण करते हो, तो वह और सब अन्य पापकर्मों के समान पाप

हो जायगा। तब वह पाप होजाता है।

भारत में ऐसे लोग हैं जो रास्ते से गुज़रते हुए दुकानों में पशु के मृतक शरीर को लटकता देखकर मूर्छित होजाते हैं। खाना तो दूर रहा, वे उसे देख भी नहीं सकते।

अपने स्वार्थी ज़ायकों की तृप्ति के लिए जब तुम मांस खाते हो, तब मांस खाना पाप होजाता है, किन्तु यदि तुम उसे दवा की तरह व्यवहार करते हो, यदि तुम केवल उपयोगी कार्य करने और अपने शरीर को मानव-जाति का हित करने की योग्यतम अवस्था में रखने के लिए उसे ग्रहण करते हो, तो मांस-भक्षण कुछ भी पाप नहीं है।

लोगों का मुख्य अभिप्राय स्वाद होता है। यदि कोई चीज़ स्वादिष्ट है, और सत्य के पक्ष को भी प्रबल करने में सहायक होती है, तो उसे ग्रहण कर लो। किन्तु केवल मधुरता के लिए किसी चीज़ को ग्रहण करने से काम नहीं चलेगा। सामान्यतः सुस्वादु चीज़ें उपयोगी भी होती हैं, किन्तु सदा ऐसा नहीं होता।

अब एक दूसरा प्रश्न उठता है। कितना प्रायः धर्म-ग्रन्थों का विपरीतार्थ ग्रहण किया जाता है, कितनी प्रायः पुस्तकों की अनर्गल व्याख्या की जाती है? समाज के लिए यह बड़ी भारी व्याधि है—धर्मग्रन्थों का यह अनर्थ ग्रहण किया जाना और नाम मात्र पवित्र धर्मग्रन्थों वा पुस्तकों का दुरुपयोग।

कहा जाता है कि मिल्टन (कृत पुस्तक) को पढ़ने के लिए दूसरे मिल्टन की ही ज़रूरत है। बहुत ठीक है। इसी तरह एक सिद्ध को भी समझने के लिए दूसरे सिद्ध की ज़रूरत है। और ईसूमसीह को समझने के लिए तुम्हें ईसूमसीह होजाना चाहिए। वेदों को समझने के लिए तुम्हें वेद बनना चाहिए। वदान्ती लेखकों ने, जिनके लेखों का तो

उपयोग किया जाता है, पर जिनके नाम नहीं लिए जाते, इस कल्पना को बड़ी उत्तमता से लिखा है। इन लोगों ने इस दर्जे तक अनुभव किया कि पाठक का शरीर मानो उन्हीं का शरीर है। वेदों में हमें ऐसे वाक्य मिलते हैं, "ए लोगों! वेदों से ऊपर उठो, शिक्षाओं का उपयोग करो, और उनसे लाभ उठाओ"। "देवताओं और देवदूतों (फरिश्तों) से ऊपर उठो, देखो तुम क्या हो। तुम सब कुछ हो"। यही हज़रत ईसा कहते हैं। इंजील से हम ऐसे वाक्य चुन सकते हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार का है। "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है"। लोग इसका बिलकुल ग़लत इस्तेमाल करते हैं। वे अर्थ का अनर्थ करते हैं। यह बात राम को एक कहानी की याद दिलाती है।

एक बार एक गुरू बहुत थक कर एक पलंग पर पड़ रहा और अपने चेले से कहा कि अपने पैरों से लताड़ दो, अर्थात् मेरी देह को दाब दो। भारत में इस तरह से देह दबवाने की चाल बहुत अधिक है। इस लिए गुरू ने लड़के से अपनी देह दाब देने को कहा, किन्तु लड़का बोलाः—"नहीं, नहीं, गुरुदेव! मैं ऐसा कभी न करूँगा। तुम्हारा शरीर अति पवित्र है, तुम्हारा व्यक्तित्व अत्यन्त पूत है। तुम्हारी देह पर अपने पैर मैं नहीं रख सकता, यह तो अधर्म होगा। मैं ऐसा घोर पाप न करूँगा। मैं आप के लिए सब कुछ कर सकता हूँ, मैं आपके लिए अपनी जान तक दे सकता हूँ, किन्तु आपकी देह तो पैरों से न रौंदूँगा"। गुरु ने कहा, "ऐ बेटे! आ, मैं बहुत थका हूँ, आ, आ, और मेरी देह दाब दे"। लड़का रोने लगा, परन्तु यह अधर्म करने को न राज़ी किया जासका। गुरू ने कहा "ऐ मूर्ख लड़के! तुम मेरे निचले अंगों को पैरों से नहीं रौंदना चाहते, तुम मेरे शरीर का अनादर नहीं करना

चाहते, किन्तु तुम मेरे पवित्र ओठों को कुचलते हो, तुम मेरे पवित्र चेहरे को रौंदते हो। इनमें अधिक अधर्म क्या है? गुरू की आज्ञा का उल्लंघन अधिक पापमय है, या उसकी देह दावना?"

ईसा या मोहम्मद के पवित्र ग्रन्थों, अथवा वेदों को तो बात की बात में लोग कुचल डालते हैं, किन्तु इस रक्त और मांस को लोग पूज्य और पवित्र समझते हैं, उसी रक्त और मांस को जिसे खाने को लोगों से ईसा ने कहा था। क्या ईसा ने अन्तिम-भोज में अपना मांस खाने और पीने को लोगों से नहीं कहा था? जब रोटी तोड़ी गई थी, उसने कहा "यह मेरा मांस है, यह मेरा रुधिर है"। सभी सिद्ध पुरुष यही समझते हैं। सब व्यक्तियों में, सब देहों में, वे परमेश्वर को देखते हैं, और उन पर प्रभुता पाने की इच्छा करते हैं। वे (सिद्ध) उनके (देहधारियों के शरीरों से ऊपर उठने को कहते हैं, वे उनसे अपने शरीर कुचलने को कहते हैं, किन्तु तुम उनके शरीर न दाबोगे, चाहे उनके पवित्र सम्वाद भले ही कुचल डालो।

व्यक्तित्व से ऊपर उठो, भीतर के परमेश्वर को ढूँढो। यदि ईसा कभी इस संसार में रहा था, तो वह तुम्हारे शरीरों में रहता है। ईसा को अपने धर्म का उद्गम-विन्दु (Stand point) बनाओ, उसे अपनी अग्र गति का प्रस्थान विन्दु (Stand point) बनाओ, उसे अपनी सीमान्तरेखा बनाओ, और उसे अपने इर्द-गिर्द कण्टक न होने दो। उसे अपने धर्म का, अपनी उन्नत्ति का, उद्गम स्थान होने दो। खुद ईसा बनो, और ईसा का अर्थ समझो।

अच्छा, आज कल क्या हो रहा है? जा लोग इस तुच्छ मिथ्या, शैतानी अहंकार (अहंभाव) से छुटकारा नहीं पाना

चाहते, वे ईसा को पाञ्चभौतिक बनाना चाहते हैं, और वे परमेश्वर को घूँघट की ओट में भी रखना चाहते हैं। वे ईश्वर को साकार और वाह्य वस्तु ही बनाये रखना चाहते हैं। अपने को उठा कर ईश्वर बनाने के बदले वे ईश्वर को नीचे उतार कर अपने बराबर करना चाहते हैं। इंजील में दो हास्यजनक शब्दों से इसका दृष्टान्त दिया गया है, अर्थात् "परमेश्वर की आत्मा जल पर बहुत काल तक चिन्ताकुल रही"।

हिन्दुस्तान में एक लड़का था, किसी कलवार (मद्य विक्रेता) का पुत्र था। वह स्कूल में भरती किया गया और अंग्रेजी पढ़ने लगा।

भारतवर्ष में, खास कर ईसाई प्रचारकों के स्कूलों (Missionary Schools) में पहले इंजील पढ़ाई जाती है। अंग्रेज़ी पाठ का सम्बन्ध इंजील से था। जब लड़का इस वाक्य पर पहुँचा, "परमेश्वरकी आत्मा जल पर बहुत काल तक चिन्ताकुल रही", तब वह बहुत घबराया। लड़का "स्पिरिट" (Spirit, सार, भूत, शराब, आदि) शब्द जानता था, और वह "ब्रूडिड" (brooded, बहुत काल तक चिन्ताकुल रही, जन्म दिया) शब्द तथा "वाटर (जल)" शब्द भी जानता था, किन्तु वह God (ईश्वर) शब्द नहीं जानता था। और उसने कहा "गाड (ईश्वर) की आत्मा ने जन्म दिया (brood ब्रूड का अर्थ जन्म देना या अंडे सेना भी है)"। क्या "गाड" का अर्थ जौ है, या गल्ला अथवा अंगूर ? मैं जानता हूं कि जौ और गल्ले से या अंगूर इत्यादि से शराब निकलती है। और उसने सोचा कि यह विलक्षण प्रकार की मदिरा थी जो समुद्र में रक्खी गई, उसका पिता तेज़ शराबों में पानी मिलाया करता था और

वह वैसी शराबों से परिचित था, किन्तु यह तो अजीब तरह का मिश्रण था।

अरे, इसी तरह लोग धर्मग्रन्थों का अनर्थ करते हैं, क्योंकि वे कलवारियों (wine shops) में बहुत अधिक रहते हैं, क्योंकि वे स्थूल भौतिक पदार्थों में बहुत अधिक रहते हैं, और इस लिये उन उत्कृष्ट तथा पवित्र धर्म पुस्तकों का स्थूलार्थ ग्रहण किया जाता है, और वे भौतिक बनाई जाती है।

एक मनुष्य सेना में नियुक्त था। वह एक रमणी को चाहता था, उसका बड़ा अफसर भी उसी युवती को प्यार करता था। इस रमणी ने एक मातहत कर्मचारी को अपना दिल दे दिया था। मातहत पदाधिकारी छुट्टी लेकर घर गया। रमणी भी मौक़े से लाभ उठाकर उसके घर पहुँची। विवाह की ठहर गई, और इस लिये उसने अपनी छुट्टी बढ़वाना ज़रूरी समझा। छुट्टी बढ़ाने को उसने अपने उच्च अधिकारी को तार दिया। ऊँचे अफसर को सब हाल मालूम होगया और वह जान गया कि रमणी से ब्याह करने के लिए छुट्टी मांगी गई है। ऊंचा अफसर ईर्ष्यालु था और छुट्टी नहीं देना चाहता था। जवाब में, उसने जल्दी से दुटप्पी (संक्षिप्त) भाषा में, यह संदेश भेजा, "तुरन्त मिल जाओ (Join at once)"। उसका मतलब था कि मातहत पदाधिकारी तुरन्त आकर सेवा में मिले। यह मनुष्य वह संदेश पढ़ रहा था जिसमें कहा गया था "तुरन्त संमिलित हो" और वह बहुत चाहता था कि घर पर ठहरूं, किन्तु सन्देश कहता था "तुरन्त संमेल करो"। उसे इस बातसे बड़ी निराशा और व्यग्रता हुई। जब उसके चित्त की यह हालत थी, तब रमणी आई और उसे इतना निराश देख कर कारण

पूछने लगी। उसने उसे तार दिखाया। रमणी की चपल मति ने संदेश का अपने अनुकूल अर्थ लगाने में उसे सहायता दी, और उसने संदेश का बड़ा ही प्रसन्नकारी अर्थ लगाया, तथा खुशी से नाचने लगी। उसने उस (प्रेमी) से पूछा कि इतने उदास क्यों हो, तुम्हें तो मेरी समझ से प्रफुल्लित होना चाहिए। वह कमरे से निकलने को थी, तब उसने [पुरुषने] पूछा, जाने की इतनी जल्दी क्यों है? उसने उत्तर दिया, "जल्दी से विवाह होने की तैयारी करने के लिए"। इस तरह लोग धर्मग्रन्थों से अपना मतलब निकाल लिया करते हैं। ऐसा अर्थ विवाह करने को उत्सुक महिला के लिए ठीक हो सकता है, परन्तु धर्मग्रन्थों का ऐसा अर्थ करने से काम न चलेगा।

धर्मग्रन्थ हमें बतलाते हैं, "शरीर परमेश्वर का मन्दिर है। इस बचन का बड़ा ही दुरुपयोग किया जाता है। निस्सन्देह देह परमेश्वर का मन्दिर है, किन्तु क्या इस वचन का यह अभिप्राय था कि मन्दिर ही सब कुछ है और भीतर के परमेश्वर को भूल जाओ? मन्दिर का अभिप्राय वही नहीं था जो आज कल मे रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के मन्दिरों का है। लोग भीतर के परमेश्वर को भूल जाते हैं और मन्दिर ही को सब कुछ बना देते हैं।

उस वाक्य का मतलब यही था कि भीतर के परमेश्वर की, परमात्मा की पूजा की जाय, और मन्दिर की नहीं।

लोग मन्दिर में प्रवेश करते हैं, और अन्तरस्थ ईश्वर को भूल जाते हैं। इस लिए जब वे पढ़ते हैं कि "शरीर ईश्वर का मन्दिर है", तब वे अर्थ का अनर्थ करते हैं, और वाक्य का दुरुपयोग करते हैं, और शरीर को परिपुष्ट करते हैं।

कभी कभी देखा जाता है कि लोग शरीर का बहुत ख़याल रखना चाहते हैं, और अपने मिथ्याभिमानों तथा चित्त-तरंगों का बहुत दुलार करते हैं, तथा अपने इन कार्यों के समर्थन में इस वाक्य (शरीर ईश्वर का मन्दिर है) का हवाला देते हैं। अपने मिथ्याभिमान, दुर्बलता और अज्ञान की रक्षा के लिए यह एक गढ़ बना लिया जाता है।

मूल वचनों (मंत्रों) का यह एक दुरुपयोग है। यही कुशल है कि वे "मन्दिर" शब्द का और भी अधिक स्थूल प्रयोग नहीं करते। जब किसी एक विद्यार्थी ने यह वचन पढ़ा कि "शरीर ईश्वर का मन्दिर (temple टेम्पुल * है," तो उसने प्रश्न किया "ईश्वर के कान कहां हैं"? यही ख़ैरियत है, वे इस वचन की और भी अधिक स्थूल व्याख्या नहीं करते, जो व्याख्या की जा चुकी है, वही काफी स्थूल है।

यदि देह ईश्वर का आलय (मन्दिर) है, तो तुम्हें उसे भूल जाना चाहिए, वह भूल जाने ही के लिए है। मन्दिर का अच्छा उपयोग उसे भुला देना ही है, न कि सब तरह की निधियों से उसे परितृप्त करना और लादना। अन्दर के ईश्वर का अनुभव करो, मन्दिर अपनी चिन्ता आप कर लेगा।

क्या ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है? क्या ईश्वर का मन्दिर सर्वत्र नहीं है? सूर्य परमेश्वर का मन्दिर है। क्या सब नक्षत्र परमेश्वर के मन्दिर नहीं? हरेक वस्तु परमेश्वर का मन्दिर है। राम कहता है, प्रत्येक पदार्थ ईश्वर का मन्दिर है। देह ईश्वर का मन्दिर इस लिए है कि वह तुम से अत्यन्त निकट है।

---

*temple (टेम्पुल) शब्द का एक अर्थ "कनपटी" भी है।

प्रत्येक पदार्थ तुम्हें परमेश्वर की शिक्षा देता है । प्रत्येक पदार्थ का मूल परमेश्वर है । इस सम्बन्ध में राम तुम से एक बात कहना चाहता है ; मानसिक पीड़ा, आन्तारिक शूल, चिन्ता, या क्लेश से व्यथित सब लोगों को वह बैकुण्ठ का एक संदेह देना चाहता है ।

सम्पूर्ण विश्व के इतिहास के पन्नों में ईश्वर ने यह सन्देश भेजा है । ईश्वर यह सन्देश तुम्हारी नाड़ियों में, तुम्हारी स्नायुयों में, तुम्हारे मस्तिष्क में, भेजता है । प्रत्येक कुटुम्ब में, हरेक परिवार में, भगवान् इस सन्देश का प्रचार कर रहा है । इस सन्देश को सुनो, इस पर ध्यान दो, और अपना उद्धार करलो । यदि इस सन्देश पर ध्यान न दिया, इसका अनादर किया, तो अपने को फाँसी पर चढ़ा लोगे, मरोगे, नष्ट होगे । कोई विकल्प (alternative) नहीं है ।

मनुष्य दिन में कितनी बार मरता है ? जब तुम भय भीत या बहुत परेशान होते हो, जब कभी तुम ऐसी भयङ्कर अवस्था में होते हो, तभी मृत्यु है; तब तुम अन्तरस्थ परमेश्वर को भूल जाते हो । उस की ओर ध्यान दो, और अपनेको बचाओं । उसका निरादर करोगे तो तुरन्त विनष्ट हो जाओगे ।

यही कानून (दैवी विधान) है-निष्ठुर (unrelenting), अलंघ्य (inviolable), बहुत सख्त, और बड़ा कठोर । यह दैवी-विधान है । सन्देश क्या है ? उसे सुनो "जो पूज्य होना चाहते हैं , वे शूली पर लटकने की यातना भोगें" । ईसा ने पहले सूली चढ़ने की तकलीफ उठाई, और बाद को पूजा गया । भगवान् बुद्ध ने सूली (अति पीड़ा) का कष्ट पहिले उठाया, और फिर पूजा गया । सुकरात सूली चढ़ा और आज उसका

शरीर पूजा जाता है। ब्रूनो पहले मरा और उस का सम्मान पीछे हुआ। भारत में हज़ारों सिद्ध (महापुरुष) बलिदान पहिले हुए और पीछे वे पुजे। इन लोगों ने पहले मूल्य दिया, और पीछे पुरस्कार पाया।

यह तथ्य है कि इन सब सिद्धों ने पहले कीमत दी, और पीछे अपना इनाम पाया। किन्तु संसार के दूसरे लोगों का क्या हाल है? इस संसार के नर नारियों की क्या बात है? वे पहले ख़रीदना चाहते हैं, किन्तु मूल्य देने से हटते हैं। परन्तु मूल्य देना होगा।

हरेक चाहता है कि वह पूजा जाय। पूजा के अर्थ हैं प्रेम और आदर तथा सत्कार। हरेक प्रेम, आदर, और सत्कार पाना चाहता है, और लोग चारों ओर भक्ति पाना चाहते हैं। वे अपने इर्द-गिर्द खुशामदों को चाहते हैं। सांसारिकता के इस रोग से, मिथ्याभिमान के इस रोग से, देह पर प्रेम के इस रोग से, दूसरों की देह के लिए इस प्रेम से, इस बद्धमूल रोग से, इस अज्ञान से जो तुम्हें शरीर में आत्मा का विश्वास कराता है और जिस के कारण तुम देह को अपने अन्दर का सार पदार्थ समझने की भूल करते हो, इस अज्ञान से जो अपने को पूजाजाने की लालसा में बदल लेता है, संसार में हरेक व्यक्ति व्यथा पा रहा है। बिना उचित मूल्य दिये इस रोग का, पूज्य होने की इस कल्पना का, आनन्द नहीं लूटा जा सकता। परमेश्वर का यह दैवी-कानून किसी को माफ नहीं करता, न तो ईसा को छोड़ता है और न कृष्ण को। ईसा को क़ीमत देना पड़ी थी, पहले सूली मिली और पीछे को वह पूजा गया। कानून के अनुसार सुकरात ने पहले मूल्य दिया, और पीछे वह पूजा गया।

सब सिद्धों ने पहले मूल्य दिया और पीछे वे पूजे गये।

तुम्हारे नेपोलियन, वाशिंगटन, और दूसरे महापुरुषों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजे गये। निउटन और अन्य महापुरुष क़ब्र में जी रहे हैं, अब वे क़ब्रों में उन जीवनों को बिता रहे हैं, जो पहले बलिदान (crucifixion) के जीवन थे। वे शरीर से (अर्थात् देह-दृष्टि से) ऊपर हैं, भूख और प्यास की पीड़ाओं से परे हैं।

निउटन का जीवन-चरित्र पढ़ो, और तुम देखोगे कि अनेक बार वह भोजन करना भूल गया। इन लोगों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजा पाई।

क़ानून (दैवी-विधान) किसी को नहीं छोड़ता, वह व्यक्तियों का आदर नहीं करता, वह तुम्हारे पापियों या पुण्यवानों (साधुओं), तुम्हारे सिद्धों या तत्त्वज्ञानियों का लिहाज़ (पक्ष) नहीं करता। यह दारुण, निष्ठुर कानून (विधान) है। तुम्हें अपने मामले में किसी विशेष व्यवस्था की आशा करने का क्या हक है? अपने शरीरों के लिए विशिष्ट आदर की आशा करने वाले तुम कौन हो? यदि दूसरों के प्रिय, पूज्य, या सम्मान्य होने की तुम आशा करते हो, यदि दूसरों से तुम आदर पाने और बहुत कुछ समझे जाने की इच्छा रखते हो, तो पहले तुम्हें कीतम देनी होगी।

"दी ज्योवेस" (The Jewess, यहूदिन) नामी नाटक में "ज्योवेस" ने जोज़ेफ की पूजा का पात्र बनना चाहा। अच्छा, पहले ही तुम्हारी पूजा सही; उसकी पहिले पूजा हुई, किन्तु उसे कीमत देनी पड़ी थी। यदि प्रकृति, विधान या परमेश्वर भी तुम्हारा कुछ आदर करता है, और तुम्हारे घर में कोई वस्तु भेजी जाती है, तो यह मतलब नहीं है, कि "वह" मूल्य न माँगेगा।

यदि हमने पहले ही मूल्य दे दिया होता, तो बहुत अच्छा

होता, किन्तु अब "उसने" किताब भेज दी है, और मूल्य का तगादा बड़ा कड़ा है।

'ज्योवेस को जोज़ेफ़ ने पूजा और उसे मूल्य देना पड़ा। पाँच वर्ष तक वह प्रेमोन्मत रही, और बावलेपन में आंय-बांय शांय बकती रही। अज्ञान को दण्ड, मूल्य, देना होगा।

हरेक उपन्यास या नाटक में जो हरेक नायक की दशा होती है, वही संसार के सम्पूर्ण इतिहास में संघटित होता है। इस परिच्छिन्नता से छुटकारा पाना ही 'कानून" (विधान) है। केवल तभी तुम्हारा समुचित प्यार किया जायगा, अन्यथा कदापि नहीं।

इच्छाओं की तृप्ति का उपाय यही है कि ये इच्छायें त्याग दी जायं। फारसी में एक सुन्दर शब्द है, जिसे 'मतलब' कहते हैं। इस शब्द का एक अर्थ तो "कामना" है, और दूसरा अर्थ है "कभी न मांगो"। यह एक विचित्र शब्द है। वास्तविक कामनायें, जो तुम में हैं, उनकी तृप्ति के अर्थ उन्हें दूर कर देना चाहिए। कामनाओं से ऊपर उठो; व्यक्तित्वसे, इस तुच्छ देह से ऊपर उठो।

यह एक दीपक है। पतंगों को दीपक भाता है; वे उसे प्यार करते हैं, और वे आते तथा अपनी देहों को उसके लिए भस्म कर देते हैं। एशिया में इस जल जाने को प्रेम का एक चिन्ह समझा जाता है, और लोग कहते हैं, "ये पतंगे दीपक से इतना प्रेम करते हैं कि अपने को जला देते हैं"।

वेदान्त कहता है, "नहीं, नहीं, पहले दीपक अपने को जलाता है, और तत्पश्चात् प्यार किया जाता है"।

इसी तरह शरीर से ऊपर उठो, अपने इस व्यक्तित्व को जला दो, इसका दाह करो, इसे नष्ट करो, इसे भस्म कर दो, केवल तभी तुम अपनी इच्छाओं को पूरा होते देखोगे; तब

तुम्हें पूजा जायगा; तब तुम्हारी कामना के पदार्थ तुम्हारी उपासना करेंगे। दूसरे शब्दों में, "अपना अहंकार त्यागो (वा निग्रह करो)"। यह कहना सहज है, किन्तु इसे अमल में लाना चाहिए।

गिर्जाघरों में ही तुम्हारा मामला ईश्वर से समाप्त नहीं होजाता; मन्दिरों में, तथा रीतियों को पूरा करके ही तुम ईश्वर से छुट्टी और स्वाधीनता नहीं पा सकते। ईश्वर का दरबार कर आने से काम न चलेगा। तुम्हें अपने जीवन के हरेक दिन अपना निग्रह करना होगा, वा अपना अहंकार भुला देना होगा। अपने मित्रजनों से अपने साधारण व्यवहारों में, बाज़ार में, चीज़ें खरीदने में, नातेदारों से अपने सम्बन्धों में, तुम्हें इसका अनुभव करना होगा।

ज़रब का पहाड़ा पढ़ने वाले लड़के को ज़रब के क़ायदे सिखाये जाते हैं। गुणके नियम लड़के के चित्त में जम जाते और उसे याद हो जाते हैं। किन्तु इतना ही काफी नहीं है। केवल उसकी बुद्धि ने त्रैराशिक सीख लिया है, उसे तब तक उसको अभ्यस्त और सिद्ध करना होगा जब तक उसका उससे मानो तादात्म्य न होजाय, जब तक वह उसमें पूरा दक्ष न होजाय। जब तक तुम्हें कोई नियम केवल कण्ठाग्र है, तब तक वह केवल तुम्हारे दिमाग़ में है, और तुम प्रायः गलतियां (भूलें) करोगे। भूलों से तब तक बचाव नहीं हो सकता, जब तक आप सैकड़ों-हज़ारों सवाल न हल कर डालें और उन्हें हस्तामलक न करलें, केवल तभी तुम बिना भूलें किये सवाल हल करने के योग्य होगे।

ठीक यही बात, "आत्मनिग्रह करो" तुम्हें इंजील में पढ़ने को मिलती है, और तुम इसे उसी तरह पढ़ते हो जिस तरह एक लड़का त्रैराशिक सीखता है। किन्तु इतना काफ़ी

न होगा, तुम्हें अपने नित्य के सम्पूर्ण व्यवहारों में इसे प्रयुक्त करना होगा, तुम्हें अपना चित्त इस पर एकाग्र करना होगा, इसे बार बार लगाना और अभ्यास करना होगा, आत्म-निग्रह द्वारा सवाल लगाना होगा।

बच्चों से अपनी बातचीत में इस नियम को लागू करो। सड़क पर चलते समय आत्म-निग्रह करो। हँसी-दिल्लगी करते समय इस नियम को काम में लाओ। तुम्हें इस सवाल को लगाना चाहिए, इस सवाल को जाँचना चाहिए। वेदान्त सीखना सहल काम नहीं है। वेदान्त की पुस्तक का पाठ सुगमता से तुम्हें सुनाया जा सकता है, किन्तु वेदान्त अपने आपही तुम्हें सीखना होगा। निरन्तर अभ्यास, विवेक और वेदान्त में दक्षता प्राप्त करने से काम हलका होजाता है।

जब राम गणित विद्या का अध्यापक (professor) था, तब वह गणित के सवाल उतनी ही जल्दी हल कर लेता था, जितनी शीघ्रता से वह उन्हें लिखता था। वे बड़ी सरलता से हथियाये जाते अर्थात् विचार लिये जाते थे। क्यों? कारण यही था कि विभिन्न नियमों को राम ने यहां तक याद किया था सि वे उसकी उँगलियों के पोरों पर मौजूद रहते थे। राम का अभ्यास इतना बढ़ा चढ़ा था कि (उदाहरणार्थ) १८ अठारह अंकों के गुण्यांक और १७ सत्रह अंकों के गुणक का गुणन-फल राम तुरन्त एक क्षण में बता देता था। क्योंकर? अभ्यास की बदौलत। इस तरह तुम्हारा मन्दिर केवल तुम्हारे हृदय में तो न होना चाहिए। वेदान्त का मन्दिर दुकान में है, सड़क पर है, अपने विस्तर पर इस सत्य की प्रार्थना और अभ्यास करने में है, तुम्हारे अध्ययन में है, तुम्हारे भोजनागार में है, तुम्हारे बैठक खाने में है, और तुम्हारे बात चीत करने के कमरे में है। इन मन्दिरों में तुम्हें

रहना और सत्य का अनुभव करना होगा। ये स्थान हैं, जहां तुम्हें अपने सवाल हल करना होंगे।

जब राम लड़का था, एक दिन वह सड़क के किनारे एक किताब पढ़ता हुआ जा रहा था। एक भद्र पुरुष आया और उसने राम से दिल्लगी की। उसने कहा, "तुम यहाँ क्या कर रहे हो? युवक महोदय! यह पाठशाला नहीं है, किताब अपनी अलग करो"। राम ने उत्तर दिया, "सम्पूर्ण विश्व मेरा पाठशाला है"। अब राम समझता है कि तुम्हारी पाठशाला क्या होनी चाहिए।

यदि प्रतिदिन जीवन में वेदान्त पर अमल नहीं किया जाता, तो वह किस काम का? किताबों में छपा हुआ और कीड़ों से खाये जाने के लिए अलमारी में रक्खा हुआ वेदान्त काम न आवेगा। तुम्हारा जीवन वेदान्त के अनुसार बीतना चाहिए।

वेदान्त को अग्नि कहा जाता है। यदि वेदान्त हमारे संकट और पीड़ा को नहीं दूर करता, तो यह दैवी-अग्नि उस श्रेणी की भी नहीं है जिसकी कि भौतिक अग्नि, जो तुम्हारा भोजन पकाती है, जिससे तुम्हारी भूख बुझती है, और जिससे तुम्हारी सर्दी दूर होती है। यदि वेदान्त तुम्हारी सर्दी नहीं दूर करता, यदि वह तुमको सुखी नहीं करता, यदि वह तुम्हारे बोझों को नहीं दूर हटाता, तो उसे ठोकरा कर फेंक दो।

तुम तभी वेदान्त सीखते हो, तुम तभी उसे प्राप्त करते हो, जब तुम उसे अमल में लाते हो।

एक समय युधिष्ठिर नाम का एक मनुष्य था। वह भारत के सिंहासन का युवराज था। उसके बचपन की एक कहानी प्रचलित है।

अपने छोटे भाइयों के साथ वह पाठशाला में पढ़ता था। उस के बहुतेरे भाई थे। एक दिन बड़े गुरु, परीक्षक जी, उन लड़कों की परीक्षा लेने आये। इन आचार्य जी ने आकर पूछा कि उन्हों ने कहां तक पढ़ा है। और छोटे लड़कों ने जो कुछ पढ़ा था वह गुरु के सामने रख दिया। जब इस लड़के की बारी आई, तब फिर गुरु जी ने वही सामान्य प्रश्न किया, और लड़के ने पहली पुस्तक खोल कर सुखी स्वर में बिना ज़रा सा भी लज्जित हुए कहा, "मैंने तो वर्ण माला पढ़ी है, और पहला वाक्य पढ़ा है"। शिक्षक ने पहला वाक्य दिखा कर कहा, "बस, इतना ही"? गुरु ने कहा, "और भी कुछ तुमने पढ़ा है?"। लड़के ने हिचकते हुए कहा, "दूसरा वाक्य"। राज कुमार ने, प्यारे छोटे बालक ने, यह प्रसन्नता पूर्वक और सहर्ष कहा। किन्तु गुरु जी रुष्ट होगये, क्योंकि वे उस से उच्च विद्या और अधिक बुद्धि का अधिकारी होने की आशा करते थे, न कि घोंघे की सी सुस्ती। गुरु जी ने उससे अपने सामने खड़े होने को कहा। वह बड़ा निर्दयी था और उसने विचारा "छड़ी से काम न लेना लड़के को विगाड़ना है"। तुम जानते हो कि अध्यापक समझते हैं कि लड़कों पर छड़ियां तोड़ डालने से उनका सुधार हो जाता है, और जितनी ही अधिक छड़ियां वे लड़कों को पीटने में तोड़ेंगे, उतना ही लड़के सुधरेंगे। मन की इस अवस्था ने गुरु को अत्यन्त निर्दयी बना दिया, और उस ने लड़के को ठोकना तथा मारना शुरु किया, किन्तु लड़का सावधान रहा। वह पहले की तरह प्रसन्न रहा, वह सदा की भांति खुश रहा। गुरु ने कई मिनटों तक उसे पीटा, किन्तु राजकुमार के सुन्दर मुख पर क्रोध या चिन्ता, भय या रंज का कोई चिह्न नहीं दिखाई दिया। तब तो लड़के का चेहरा देख कर गुरु जी को

तरस आगया, मानो पत्थर भी तो पिघल जाता है। गुरुने विचार किया और अपने मन में कहा, यह मामला क्या है? यह बात क्या है कि यह लड़का, जो अपने एक शब्द से मुझे बर्ख़ास्त करवा सकता है, और जो एक दिन मुझ पर और समग्र भारत पर हुकूमत करेगा, इतना शान्त है? मैंने उस पर इतनी कठोरता की और वह ज़रा सा भी नाराज़ नहीं हुआ। मैंने एक समय अन्य भाइयों पर सख़्ती की थी और वे बिगड़ गये, और उन में से एक ने तो छड़ी पकड़ कर मुझे पीटा था, किन्तु इस लड़के ने अपना मिजाज़ ठीक रक्खा। वह प्रसन्न है, शान्ति और अविचलता उसके मुख़ पर विराज रही है। तब गुरू की दृष्टि पहले वाक्य पर पड़ी, जो लड़के ने पढ़ा था।

आप जानते हैं, भारत में प्रारम्भिक पुस्तकें कुत्तों और बिल्लियों (की कहानियों) से नहीं शुरू होतीं। भारत में प्रारम्भिक पुस्तकें ईश्वर से, और सदुपदेश से शुरू होती हैं। संस्कृत पुस्तक में वर्णमाला के बाद पहला वाक्य था, "कभी क्षुब्ध मत हो, कभी विकल मत हो, क्रोध न करो"। दूसरा वाक्य था, "सत्य बोलो, सदा सत्य बोलो"। लड़के ने कहा था कि उसने पहला जुमला पढ़ लिया है, किन्तु दूसरा जुमला पढ़ लेने की बात उसने हिचकते हुए कही थी। अब, गुरू की दृष्टि पहले जुमले "कभी क्षुब्ध मत हो, क्रोध न करो" पर पड़ी, और फिर उसने लड़के के मुख की ओर देखा। गुरू की एक आँख लड़के के चेहरे पर थी और दूसरी आँख पुस्तक के जुमले पर थी। तब तो वाक्य का अर्थ उसके चित्त में कौंध गया।

तब तो लड़के के चेहरे ने जुमले के माने कह दिये। लड़के का चेहरा पुस्तक में लिखे हुए जुमले "कभी क्रोध न करो" का अवतार था। लड़के के शान्त, स्थिर, उज्ज्वल,

प्रसन्न, सहर्ष, और सुन्दर मुख ने "कभी क्रोध न करो" वाक्य का अर्थ गुरू के हृदय में जमा दिया।

अब तक तो गुरू (जुमले को केवल) लाँघ गया था, उसने वाक्य का सारांश पहले केवल ओठों से रट रक्खा था। अब गुरू ने जाना कि यह वाक्य केवल तोते की तरह कहने के लिए नहीं है, यह अमल में लाया जा सकता है, कार्य में परिणत किया जा सकता है, और तब उस (गुरु) ने अनुभव किया कि मेरी विद्या कितनी तुच्छ है। वह अपने मन में लज्जित हुआ कि मैं ने पहला वाक्य भी (वास्तव में) नहीं पढ़ा है, जब कि एक लड़के ने उसे वास्तव में पढ़ लिया है। आप समझ सकते हैं कि लड़के के लिए कोई चीज़ का पढ़ना उसे केवल जिह्वाग्र कर लेना नहीं था, किन्तु पढ़ने का अर्थ अमल करना, कार्य में परिणत करना, अनुभव करना, बोध होना, और स्वयं उसका रूप बनजाना वह समझता था। लड़के के लिए पढ़ने का अर्थ यह था।

ज्यों ही गुरू ने पढ़ने का अर्थ समझा त्योंही उसके हाथ से छड़ी गिर पड़ी, उसका हृदय कोमल होगया। उसने लड़के को पकड़ कर अपनी छाती से लगा लिया और उसका मस्तक चूमा। साथ ही उसे अपनी मूर्खता का और अपने में व्यावहारिक विद्या के अभाव का यहां तक बोध हुआ कि उसे अपने पर शर्म आई, और लड़के की पीठ ठोक कर उसने कहा, "पुत्र! प्रिय राजपुत्र! कम से कम एक वाक्य ठीक ठीक पढ़ लेने के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कि कम से कम एक वाक्य तो धर्मग्रन्थों का तुमने यथार्थ में पढ़ लिया है। अरे! मैं तो एक वाक्य भी नहीं जानता, मैं ने तो एक जुमला भी नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे क्रोध आ जाता है और मैं क्षुब्ध हो जाता हूँ, सड़ी सी

भी बात मुझे रुष्ट कर सकती है। ऐ मेरे पुत्र, मुझ पर दया कर, तू अधिक जानता है, तू मुझ से अधिक पठित है"। जब गुरू ने यह कहा, जब उसने लड़के को उत्साहित किया, तब लड़के ने कहा, "पिता! पिता जी! मैं ने अभी यह वाक्य अच्छी तरह से नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे अपने हृदय में कोप और रोष के कुछ लक्षण जान पड़े थे। जब पाँच मिनट तक मुझे ताड़ना मिली, तब मुझे अपने हृदय में कोप के चिह्न मालूम हुए"। इस तरह पर उसने दूसरे वाक्य के अर्थ बतलाये, इस तरह पर वह सत्य बोला, जब कि अपनी आन्तरिक दुर्बलता छिपाने का उसके लिए प्रत्येक प्रलोभन था, ऐसे मौक़े पर जब कि उसकी खुशामद हो रही थी। अपने अन्तःकरण में गुप्त दुर्बलता को अपने ही कर्मों से प्रकट करके बच्चे ने सिद्ध कर दिया कि उसने दूसरा वाक्य "सत्य बोलो" भी पढ़ लिया है। अपने कार्यों से, अपने जीवन द्वारा, उसने दूसरे वाक्य पर भी अ़मल किया।

पढ़ने का यह तरीका है, वेदान्त सीखने की यह शैली है, वेदान्त पर अ़मल करो, वेदान्त का अभ्यास करो।

अब राम कहता है कि दूसरा कोई तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता, तुम्हें स्वयं अपना उद्धार करना होगा, अपने त्राता हम आप ही हैं। प्रातःकाल जब तुम ॐ का गान करते हो तब वेदान्त पर अ़मल करने का, वेदान्त के अभ्यास करने का दृढ़ और प्रबल निश्चय करो। जो कोई भी काम तुम अपने ऊपर लो, उसे प्रारम्भ करने से पहले सावधान हो जाओ। नदी में नहाने को जाते समय जिस तरह तुम तैरने के लिए अपने को तैयार करते हो, उसी तरह जब कोई काम तुम शुरू करो, जब तुम किसी मनुष्य से भेट करने जाओ, जब तुम किसी व्यक्ति से मिलने वाले हो, तब

पहले अपने को मार्ग के लिए तैयार करलो। जब तुम नदी में नहाने जाते हो, तब जिस तरह अपने कपड़े खोल डालते हो; उसी तरह तुम्हें अपने को इस मिथ्या अहंकार से, इस व्यक्तित्व से, ईश्वर के इस मन्दिर से, नग्न कर लेना चाहिए। अपने को मिथ्याभिमान मात्र से शून्य कर लो, अपने को ईश्वर जानो, और अपने सच्चे आत्मा का अनुभव करो, और हरेक शरीर में ईश्वर को देखने का दृढ़निश्चय करो। जब किसी मित्र के पास जाओ, या जब कहीं भी तुम जाओ, तब तैयार होकर जाओ। और जब तुम ऐसे करने को प्रस्तुत होगे, तब तुम असफल न होगे, तुम्हारा धड़ा ठीक रहेगा, तुम कुछ खोवोगे नहीं। जब कोई काम होजाय और तुम मित्र के घर से लौटो, या जिस किसी से भी मिल कर लौटो, तब फिर अपने को तैयार करो।

जब तुम्हारे हाथ मैले हो जाते हैं, तब तुम धो डालते हो। यदि कोई सज्जन या भद्र महिला कपड़े पर धब्बा देखती है, तो तुरन्त उसे साफ करने का यत्न शुरू होता है। इसी तरह, ऐसी सोहबत में समय बिताने के बाद, जहां तुम्हारा व्यक्तित्व और अहंभाव उत्पन्न हुए थे, ऐसे संगियों से अलग होने के बाद तुरन्त ही पहला कर्त्तव्य यह है कि अपने हाथ धो डालो, और तब फिर ईश्वर होकर बैठो।

पुनः, जब तुम रुष्ट और पीड़ित हो, जब तुम्हारा धड़ा ठीक न रहे, तब तुम्हें क्या करना चाहिए? समानभार करने की उसी शैली का अनुसरण करो।

वैद्यका तराजू हवा के कारण जब हिलजाता है, तब पलड़े ऊपर नीचे लहराने लगते हैं। इसका वे (वैद्य) क्या इलाज करते हैं? वे उसे किसी निश्चल स्थान में रख देते हैं और फिर वह समय आजाता है जब धड़ा ठीक होजाता

है, और पलड़े अचल होजाते हैं। इसी तरह, जब तुम्हारा चित्त व्यग्र या रुष्ट होजाय, तब अपने को एक कमरे में बन्द करलो, मित्रों का साथ छोड़ कर एकान्त में चले जाओ। समय और एकान्त तुम्हें बलवान बना देंगे। ॐ का उच्चारण करो और वेदान्त का मनन करो, अपने ईश्वरत्व को, अपनी दिव्यता को सोचो और अनुभव करो, और तुम्हें शीघ्र ही अपनी पूर्वस्थिति पुनः प्राप्त होगी, तुम्हारा घड़ा बँध जायगा और तुम शान्त हो जाओगे।

यदि तुम समझो कि तुम्हारा अन्तःकरण उद्विग्न या कुपित है, यदि तुम्हारी समझ में आवे कि तुम्हारा चित्त खिन्न है, यदि क्रोध, वैर, चिन्ता या भय का भाव तुम्हारे चित्त में वर्तमान हो, तो तुम्हें क्या करना चाहिए? अरे! तुम्हें किसी को अपना मुँह दिखाने का कोई अधिकार नहीं है। चेचक के दानों वाला मुख किसी को न दिखाया जाना चाहिए। तुम्हें अपने को गमनागमन-निषिद्ध स्थान (quarantine) में बन्द कर लेना चाहिए। तुम हैज़े से आक्रान्त हो, तुम प्लेग-पीड़ित हो, तुमको एक संक्रामक बीमारी (Contagious disease) हो गई है, और समाज में उपस्थित होनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। पहले अपने को चंगा करो, तब बाहर आओ।

अच्छा, यदि किसी महिला या भद्र पुरुष का चेहरा या पोशाक खराब होजाय, तो वह कभी समाज में न सम्मिलित होगा। इसी तरह, यदि तुम्हारा अन्तःकरण मलिन होगया है, यदि तुम्हें कोई संक्रामक बीमारी होगई है, या यों कहिये, यदि तुम्हारी वास्तविक प्रकृति हैज़े से पीड़ित है, तो समाज में कदापि न मिलो जुलो, अकेले बैठो, ॐ उच्चारण करो, ईश्वर का अनुभव करो, और जब तुम ईश्वर को विचारने

लगो, जब तुम ईश्वर का अनुभव करने लगो, तब बाहर आओ।

राम तुमसे कहता है कि जब तुम इस शक्ति का अनुभव करने लगोगे, तब तुम्हें अपने जीवन में एक विशेष अन्तर प्रतीत होगा।

लोग फल खाना चाहते हैं, किन्तु फलने वाले वृक्ष को ही वे काट डालना चाहते हैं। वे प्रसन्न होना और सुख-भोग चाहते हैं, किन्तु वे जीवन को सत्यव्रत नहीं बनाना चाहते। सुखभोग और आनन्द केवल तभी किसी व्यक्ति को मिलता है, जब वह अपनी ईश्वरता में रहता है, अपने परमेश्वरत्व में रहता है।

लोग चाहते हैं कि इन शरीरों की पूजा हो, वे इन क्षुद्र शरीरों के लिए सब आराम चाहते हैं, किन्तु वे मूल्य देने से भागते हैं। परन्तु इससे काम न चलेगा। तुम शहरों में रह सकते हो, यह भगीरथ-श्रम तुम अपने अन्दर कर सकते हो, यह सम्भव है, यह तुम्हारे अपने तेज पर निर्भर है।

राम तुमसे कहता है कि वह भय से, चिन्ता से, रोष से परे है। किन्तु निरन्तर साधन से इसकी प्राप्ति हुई है। निर्बलता और अन्धविश्वास के अत्यन्त गहरे गढ़े से इसने रामको ऊपर निकाला है। एक समय राम अत्यन्त अन्ध-विश्वासी था, हवा का हरेक झकोरा राम के चित्त की समता को बिगाड़ देता था। पर अब सर्व अवस्था में चित्त अचल और सम रहता है। यदि एक आदमी ऐसा कर सकता है, तो तुम भी कर सकते हो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

राम-उपदेश ।

(राय बहादुर लाला बैजनाथ द्वारा प्रकाशित उर्दू रामपदेश से उद्धृत)

यदि उन्नति चाहते हो, तो बाह्य वस्तुओं तथा काम काज में भिन्नता और विचार तथा संकल्प में अभिन्नता करो। हिन्दुओं में वर्ण--व्यवस्था वास्तव में इस लिए है कि काम भिन्न भिन्न हों, परन्तु हृदय एक हों। किन्तु धीरे धीरे यह असली कारण लौकिक व्यवहार में गुम व लुप्त होगया, और आत्म-उन्नति के स्थान पर आत्म-अवनति आगई। मेरे प्यारो! याद रक्खो, कि शास्त्र व स्मृति तुम्हारे लिए हैं, तुम शास्त्र व स्मृति के लिए नहीं। भारतवर्ष की नदियों का प्रवाह पलट गया। पहाड़ों से हिमरेखा (glaciers) हट गई; वन कट गए, नगर बस गए; देश की दशा बदल गई, राज सत्ता पलट गई, लोगों के रंग और के और होगए; परन्तु तुम इस क्षण भंगुर संसार में जो प्रतिक्षण बदलता रहता है, पुराने रस्म व रिवाजों को जिनमें कुछ जान बाकी नहीं है, कायम रखना चाहते हो। हाय वह मनुष्य जो आगे को तो चले और पीछे को देखे कैसा बुद्धि हीन होगा? मेरे प्यारे! तुम ऋषियों की सन्तान हो, परन्तु उन के समय में नहीं रहते हो।

रेल तार, बिजली, स्टीमर सब तुम्हारे पीछे पड़े हुए हैं। तुम्हारा मुकाबला तो बीसवीं शताब्दी के यूरोप तथा अमेरिका के विज्ञान वेताओं और शिल्पकारों की बुद्धि से है। याद रक्खो कि या तो अपने को वर्तमान युग में रहने के योग्य बनाओ, अथवा पित्रलोक में पधारो। तुम्हें हमारा सलाम, प्रणाम है।

२ – यदि मातृ भूमि के हित्त (स्वदेश प्रेम) का दावा है,

तो सारे देश और उस के निवासियों के प्रति ऐसी एकादिली (हृदय) की एकता करो कि द्वैत भाव का बुलबुले के समान भी तुम्हारे और उनके बीच आवरण न रहे। यदि मैं अनुभव करलूं कि "मैं ही हिन्दूस्तान हूं, भारतवर्ष की समस्त भूमि मेरा शरीर है, मेरी आत्मा समस्त भारत की आत्मा है, यदि मैं चलता हूं, तो सारा भारतवर्ष चलता है; यदि मैं दम लेता हूं, तो सारा भारतवर्ष दम लेता है, मैं ही शङ्कर हूं, मैं ही शिव हूं, तो यही असली वेदान्त है। यही सच्ची मातृ भूमि का हित है।

३—संसार को सच्चा मान कर उस में कूदते हो, याद रक्खो कि फूस की आग में पच पच मरते हो, अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप को भूल कर नाम व रूप की कैद में फंसते हो। सत्य को जवाब देकर (छोड़ कर) असत्य (अज्ञान) में धक्के खाते हो। याद रक्खो अगर चोट पर चोट न लगे, तो मेरा नाम राम नहीं। अजगर ने समझा कि मैं कृष्ण को खा गया, पर कृष्ण को पचा न सका। यही दशा तुम्हारी है। इसी विधान को जीते जी क्यों नहीं समझते। मरने पर "राम राम सत्य है," ऐसा लोग कहते हैं। जब पहिले ही समझ जाओगे कि "राम सत्य है," तो मरोगे ही नहीं। मरते समय गीता तुम्हारे क्या काज आएगी, अपने जीवन को ही भगवत का गीत क्यों नहीं बनाते ?

४—माता छोटे बच्चे को आम चूसने को देती है। बालक आम चूसने लगता है, चूसते चूसते फल फूट पड़ा और बच्चे के हाथ पर, मुँह और कपड़ों पर रस ही रस फैल गया। अब तो न कपड़ों की सुध है, न मां की, न हाथ मुँह का होश है। रस ही रस है। इसी प्रकार यदि श्रुति भगवती का दिया हुआ यह महा वाक्य रूपी रस तुम्हारे अन्दर फूट

पड़े, तो फिर रस ही रस (ब्रह्म) हो जाओगे। मन को देव के पास ऐसे बिठाओ, कि रोम रोम में राम रच जाये, मन अमृत में भीग जाए, चित्त आनन्द में डूब जाए, इसी का नाम उपासना है। जैसे पत्थर की शिला का गंगा में शीतल हो जाना, कपड़े की गुड़िया का अन्दर बाहर से जल में निचोड़ने लगना, और मिश्री की डली का गंगा रूप से हो जाना, यही तीन दर्जे उपासना के हैं।

५—धीरे धीरे दैवी-विधान चल रहा है, परन्तु मनुष्य उससे अनभिज्ञ है। इन्द्रियों की परिच्छिन्नता में बन्द होकर नाम रूप के बालू की बुनियाद पर हवेली बनाकर वह उसमें रहता है, परन्तु अन्त में उसी के साथ बैठ जाता है। असली, हवेली जो पर्वत की शिखर पर सुदृढ़ बनी है, वह उस ज्ञानी की है, जो इस नाम रूप को भूठा और ईश्वर के नियम को जीवित जानता है। यदि इस नियम पर कि "जो सत है वह ब्रह्म है" इतनी अपेक्षा करो जितना सांसारिक मनुष्यों की राज़ी ना-राज़ी की करते हो, तो कोई बिपता तुम्हारे सिर पर नहीं आ सकती। वेद कहता है "तुम्हारी खातिर है प्रभो! मो मन ही तनबीच"। वेदों के समय में कुवांरी कन्या अग्नि की परिक्रमा देती हुई यह राग गाती थी, "हम उस एक सर्वदर्शी अपने पति के साथ एक हो जाएं, इस अपने बाप के घर (क्षणभंगुर संसार) को ऐसे छोड़ दें, जैसे दाना भूस को। और मालिक के घर में दाखिल होकर वहां से कभी न निकलें"। यही राग 'राम' के भीतर से बराबर निकल रहा है। यह शरीर फट जाए, यह सिर टूट जाय, हृदय बिदीर्ण हो जाए, परन्तु तेरे अतिरिक्त अन्य कोई विचार हृदय में न उठे। यही 'राम' का कहना है। ज़ब कभी सांसारिक मित्रों, प्रियजनों तथा कुटुम्बियों पर विश्वास करके वह प्रेम

जो ईश्वर के लिए होना चाहिये तुम उनसे करते हो, तो अवश्य धोखा खाओगे। मुसलमान कहते हैं "ला इलाह इल्लिल्ला", (एकमेवाद्वितीयम्), अर्थात् एक ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा ईश्वर नहीं। हज़रत ईसा और श्री बुद्ध भगवान् और हमारे ऋषियों का भी किसी न किसी रूप में यही कथन है। परन्तु यदि उस कथन का प्रति उत्तर उनके सुननेवालों से उस समय में और तत्पश्चात् सारी दुनिया के तत्त्वज्ञानियों से हर समय व हर बार न मिलता रहे, तो वह कथन (उपदेश सदा) क़ायम ही न रहता। यही कथन दैवी-विधान है। यही हमारा आत्मा है। यही 'राम' है। यही ब्रह्म है। यही सच्चा त्याग है। कोई जाति उसे छोड़ नहीं सकती है। यही अति कठोर है परन्तु, अमर जीवन की प्राप्ति का द्वार है। जो कोई इसके अतिरिक्त और कहीं मन लगावेगा, धोखा खायेगा, दगा उठावेगा, छोड़ा (त्यागा) जावेगा, मारा जावेगा। चाहे 'राम' के निश्चय को भोले भाले चित्त का अन्ध विश्वास कहो, परन्तु उसने तो यह दृढ़ विश्वास कर लिया है कि जिसने तत्व का साक्षात्कार कर लिया, वह न मृत्यु को देखता, न रोग को। वह सब का आत्मा हुआ सब जगह मौजूद है मेरे प्यारे! इस संसार पर विश्वास करना ही मौत (मृत्यु) है। तेरा असली आत्मा तो आनन्द स्वरूप "राम" है।

(१) देखा न शब जो यार को, नूरे ज़िया से कार क्या?
मुर्दों की क़ब्र-तार को आबो-गया से कार क्या?
(२) चाहे कोई भला कहे, ख्वाह पड़ा बुरा कहे,
पल्ला छुटा जो जिस्म से, बीमो-रज़ा से कार क्या?
(३) नेकी, बदी खुशी ग़मी, ज़ीना था बामे-यार का,
ज़ीना जलादो अब, यहां पाई बया से कार क्या?

(४) अहमके-कारे ही को है उल्फत मा-सिवाये-हक़,
काबा-ए दिल में यह ज़िना, बूए-वफ़ा से कार क्या ?
(५) इतना लिहाज़ कर लिया, दुनिया तेरा परे भी हट,
नाचू हूं साथ 'राम' के, शर्मों-हया से कार क्या ?

भावार्थः – (१) (अज्ञान की) रात्रि में यदि अपने प्यारे को हमने नहीं देखा, तो दिन की रोशनी से हमारा क्या प्रयोजन? अन्धेरे में मृतक की समाधि पर पानी और घास से क्या प्रयोजन ? (२) चाहे कोई भला कहे, चाहे कोई बुरा कहे, जब इस शरीर से पल्ला (मोह) छूट गया, तो भय और आशा से क्या प्रयोजन ? ३) पुण्य पाप और हर्ष शोक प्यारे के कोठे पर चढ़ने (ईश्वरप्राप्ति) का सोपान है। (पर हम तो अपने प्यारे स्वरूप को प्राप्त हो चुके, इस लिये) इस सोपान (सीढ़ी) को अब जला दो, हमें इन पग वाली सीढ़ियों से क्या प्रयोजन ? । (४) अन्धे पुरुष को ही ईश्वर से अतिरिक्त वस्तु के साथ प्रीति भाती है। दिल के मन्दिर में यह व्यभिचार ? ऐसी दशा में विश्वास की गन्ध से प्रयोजन क्या ? (५) ऐ संसार ! तेरा इतना लिहाज तो कर लिया, अब परे भी हट, अब तो मैं शुद्ध स्वरूप 'राम' के साथ नाच रहा हूं। सांसारिक लज्जा और प्रेम से मुझे क्या प्रयोजन।

प्यारे सुनो, वेदान्त केवल लफ़ज़ी जमाखर्च (शब्द-आडम्बर) ही नहीं, बल्कि यह संसार भी कोई बस्तु नहीं। जो इसे सच्चा मानता है, वही मरता है। एक आत्म-तत्व ही अमर है, वह ही सत् है, हां हां हां। ॐ।

के० सी० बनर्जी के प्रबन्ध से
ऐंग्लो-ओरियन्टल प्रेस, लखनऊ में छपी - १९२२

सैकड़ा खरीदने वाले ग्राहकों या एजन्टों के लिये लोग ने निम्न लिखित दर कमीशन की निश्चय की है:—

(१) २५) रु० से कम के ग्राहक को कोई कमीशन नहीं दिया जायगा।

(२) २५) रु० से ५०) रु० तक के ग्राहक को १०) रु० सैकड़ा।

(३) ५०) रु० से ७५) रु० तक के ग्राहक को १२॥) रु० सैकड़ा।

(४) ७५) रु० से १००) रु० तक के ग्राहक को १५) रु० सैकड़ा।

(५) १००) रु० से ऊपर और २००) रु० तक के ग्राहक को २०) रु० सैकड़ा।

(६) २००) रु० से ऊपर और ४००) रु० तक के ग्राहक को २५) रु० सैकड़ा।

(७) ४००) रु० से ऊपर के ग्राहक को ३३) रु० सैकड़ा कमीशन दिया जायगा।

अपने २ प्रथम आर्डर के अनुसार यदि कोई ग्राहक अपने कमीशन की दर निरन्तर जारी रखना चाहे, तो उसे अपना दूसरा आर्डर निम्न लिखित रकम से कम न भेजना होगा:—

१००) रु० तक के खरीदार को कम से कम २५) रु०

१००) रु० से ऊपर और २००) रु० तक के खरीदार को कम से कम ३०) रु०।

२००) रु० से ऊपर और ४००) रु० तक के खरीदार को कम से कम ५०) रु०।

और ४००) रु० से ऊपर के खरीदार को कम से कम १००) रु० का अपना दूसरा आर्डर भेजना होगा।

और प्रत्येक आर्डर के साथ २०) रु० सैकड़ा दाम पेशगी भेजने होंगे।

मंत्री

श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली

के

गतवर्षों के १२ भाग अब दो बराबर सैटों में विभक्त किये गये हैं।

प्रत्येक सैट (खंड) में छे भाग और पृष्ठ लगभग ७५० हैं, जिस का मूल्य बिना जिल्द ३) रु० और सजिल्द ४॥) रु० है. फुटकर भाग का मूल्य बिना जिल्द ॥=) और सजिल्द ॥|=) है. डाक और पैकिट खर्च ग्राहक के ज़िम्मे होगा।

वर्तमान वर्ष अर्थात् दीपमालिका सं० १९७९

तक लगभग १००० पृष्ठ के छे भाग प्रकाशित होंगे।

उनका पेशगी वार्षिक शुल्क निम्न लिखित रीति से है

१—प्रत्येक भाग केवल बुक पैकिट द्वारा मंगाने वाले से बिना जिल्द ३) रु० और सजिल्द ५) रु०

२—प्रत्येक भाग रजिस्टर्ड बुकपैकिट द्वारा मंगाने वाले से बिना जिल्द ३॥) रु० और सजिल्द ५॥) रु०

३—प्रत्येक भाग वी० पी० द्वारा मंगाने वाले को ॥) पेशगी अपना नाम दर्ज रजिस्टर्ड कराने के लिये भेजने होंगे, फिर उसे भी वार्षिक शुल्क के भाव से भाग मिलेंगे।

उक्त रीत्यानुसार स्थाई ग्राहक बनने के लिये शीघ्र शुल्क भेजिये या वी० पी० द्वारा भाग भेजने की आज्ञा दीजिये।

मैनेजर,

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

This book was taken from the library on the date last stamped. A fine of one anna will be charged for each day the book is kept overdue